❀ श्रीः ❀

जैनरत्न पुस्तकालय

इस बीसवीं सदी में पुस्तकालय की बड़ी उपयोगिता है। इसी हेतु से सकल साधारण के उपकारार्थ सिंहपोल जोधपुर में उपरोक्त पुस्तकालय आज तीन वर्ष से बराबर उन्नति कर रहा है। इसमें हजारों की संख्या में मुद्रित व हस्त लिखित पुस्तकों का संग्रह है।

पाठकों के अध्ययन व स्वाध्याय में सुभीता के लिये एक बहुत बड़ा वाचनालय भी बन चुका है।

इस समय में आदर्श पुस्तकालय बनाना क्या तो राज सत्ता का काम है, अथवा सम्मिलित संघ-शक्ति का ही काम है। इसलिये श्रीसंघ के श्रीमान् दानवीरों से खास निवेदन है कि अपनी उदारता से इस संस्था को आदर्श बनावें और इस पुस्तकालय से ज्ञानोपार्जन में लाभ लें।

सुज्ञेषु किं बहुना

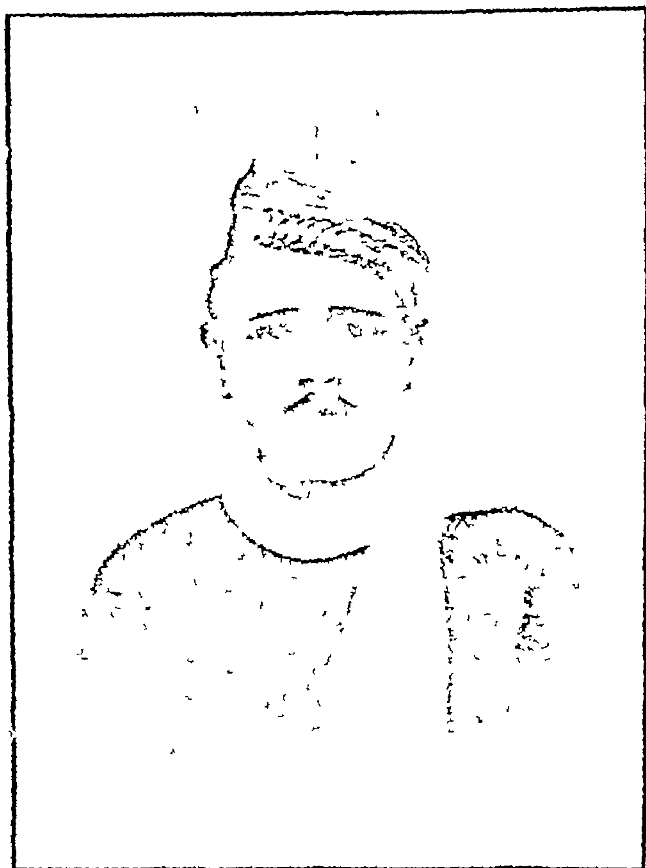
निवेदक—

सेक्रेटरी

श्री जैन-रत्न पुस्तकालय

सिंहपोल, जोधपुर सिटी

पुस्तकालय का उद्देश्य श्रमण संघ में और श्रावकों में ज्ञान विस्तार करना ही है, विशेष विवरण रिपोर्ट में देखें।



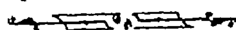
स्वर्गीय

श्रीमान् सेठ सिरेमलजी साहब मूथा गुलेदगुड़

❀ श्री ❀

स्वर्गीय सेठ श्री सिरेमलजी साहब मूथा गुलेदगढ़ निवासी का

संक्षिप्त जीवन चरित्र



स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम् ।

यों तो इस मृत्युलोक में जन्म मरण का चक्र चलता ही रहता है, किन्तु गणना उन्ही महापुरुषों की होती है, जिन्होंने परलोक की परवाह की, अपने वंश की उन्नति की, और जीवन को सफल बनाया ।

सेठ सिरेमलजी साहब मूथा भी ऐसे ही सच्चे उत्साही धर्मात्मा पुरुष थे । वीर प्रसविनी मारवाड़ की स्वर्णमयी भूमि में पीपारसिटी नामका एक नगर है । यहाँ ही संवत् १९२७ वैशाख शुक्ल ५ को पवित्र ओसवंश मे आपका जन्म हुआ था । पीपार-सिटी के महाजनों की प्रभुता, धार्मिकता, धाख बहुत बढ़ी चढ़ी है । अनेक शाखा के महाजन वहां बसते हैं, उन्हीं में एक ओस चाल वंश की मूथा शाखा में आपका जन्म हुआ था । आपके परिवार में कौटुम्बिकजनों की संख्या बड़ी थी । सम्पत्ति साहुकारी सभी दृष्टि से आपका खानदान ऊँचा था, बाल्यकाल में आपने पीपार मे ही गांव गुरु से व्यापार सम्बन्धी शिक्षा हासिल की । छोटी ही उम्र से आप में महत्त्वाकांक्षा, व्यापार कला, ऊहा-पोह की शक्ति अच्छी थी, बुद्धि भी आपकी तीव्र थी । पीढी-

जाद धन्धे को चलाने वाले आपके परिवार मे कई व्यक्ति थे, अपनी सहज महत्त्वाकांक्षा से प्रेरित होकर अपना व्यापार क्षेत्र बढ़ाने के लिये आप अजमेर गये। वहाँ के प्रसिद्ध सेठ श्री चान्दमलजी साहब के यहां ७ वर्ष तक बड़ी योग्यता से आपने नौकरी की, फिर आप की स्वतन्त्र बुद्धि ने स्वतन्त्र व्यापार करने की प्रेरणा की, तदनुसार आप अजमेर से अहमदनगर दक्षिण गये। वहाँ पर जैनागम के जानकार श्रीमान् सेठ किशनदासजी मूथा के साथ गुलेदगढ जि० बीजापुर देश कर्नाटक में दुकान की स्थापना की। संसार मे सभी सफलता का कारण धर्मानुराग, और धर्माचरण ही है। एक तो स्वाभाविक ही देव, गुरु, धर्म में आपकी अगाध श्रद्धा और अटूट भक्ति थी। दूसरे जैनागम ज्ञानी, व्रतधारी श्रावक श्रीमान् सेठ श्री बालमुकुन्दजी साहेब मूथा सातारा निवासी जैसे की संगति, तीसरे साधुमार्गीय साधुओं के सच्चे हितैषी अहमदनगर निवासी सेठ श्री किशनदासजी मूथा के सहयोग से आपकी धार्मिकता बढ़ती ही गई, आपके खानदान पूज्य श्री रत्नचंद्रजी महाराज की सम्प्रदाय के ही अनन्य भक्त थे, आपको स्वामीजी श्रीचन्दन मुनि से ही धार्मिक बोध मिला था, प्राय: प्रतिवर्ष विशेषतया पर्यूषणपर्व में एक बार सन्तों का दर्शन, व्याख्यान-श्रवण अवश्य करते थे, सन्तों के दर्शन के लिये आये हुए आपका यह अटल नियम रहता था कि जब तक सन्त गोचरी न कर लेते तहाँ तक आप भोजन नहीं करते। सारी सफलता की जननी ऐसी इसी धार्मिकता के चलते आपने कर्नाटक जैसे सुदूर व अनार्यप्रदेश में सम्पत्ति कीर्ति हासिल की।

आपने अपनी मृत्यु के समय से कुछ पहले सेठ किशनदासजी मूथा से प्रेमपूर्वक व्यापार सम्बन्ध हटाकर स्वतन्त्र व्यापार सेठ फतेमलजी सिरेमलजी मूथा इस नाम से चालू किया। इस स्वतन्त्र व्यापार में भी आपको खूब सफलता मिली। जहाँ आपने कर्नाटक जैसे सुदूरदेश में अपने बाहुबल से लाखों की सम्पत्ति कमाई वहाँ कीर्ति भी कम नहीं हासिल की।

आपने दो विवाह किये अन्तिम विवाह अहमदनगर के पास जामगाँव में हुआ था। यह धर्मपत्नी अभी भी वर्तमान हैं। आप में भी सत्कुल की कन्याओं के और उच्चकुल की कामिनिओं के सारे सद्‌गुण मौजूद हैं, लज्जा, शीलता, धर्मपरायणता, देवगुरु में भक्ति, उदारता, आदि गुणरूप भूषणों से आप अपने उच्च खानदान को सुशोभित कर रही हैं।

श्रीमान् सेठ सिरेमलजी साहब के औरस सन्तान नहीं थी, आपने लौकिक और शास्त्रीय इन दोनों परिक्षाओं से सर्वथा योग्य आकार प्रकार दोनों से होनहार ऐसे पीपार निवासी निज खानदानी सेठ श्री लालचन्दजी साहब को गोद लिया। आपभी आज योग्य पिता के योग्य पुत्र बने हुए सन्तति सम्पत्ति कीर्ति से और सर्वोपरि धार्मिकता से अपने कुल के गौरव को बढ़ा रहे हैं।

सं १९७२ फाल्गुन सुदि ११ गुलेदगढ़में सेठ श्री सिरेमलजी साहब मूथा का करीब ४५ वर्ष की अवस्था में ही स्वर्गवास हो गया। उस समय श्रीमान् लालचन्दजी साहब का अनुभव भी प्रौढ़ नहीं था, जिससे कि वे अपने कारबार को चला लेते, किंतु स्नेहमयी जननी की प्रेमपूर्ण शिक्षा से आपने तिल मात्र भी न्यूनता किसी अंश में नहीं आने दी।

पुरुषों की परीक्षा सिर्फ इसी बात में है कि सम्पत्ति की अधिकता में भी सुमति से काम लेवे। धर्माचरण में अटल रहे, कुलव्रत का पालन करे।

यह परम खुशी की बात है कि बाल्यकाल में प्रचुर सम्पत्ति के स्वामी व स्वतन्त्र होने पर भी श्रीमान् शेठ श्रीलालचन्दजी देवगुरु धर्मपर अमिट श्रद्धा रखते हैं, और धर्म को प्राण समान प्रिय समझते हैं। अपने वैभव का धर्म व समाज की हितरक्षा में सदुपयोग करते हैं। ऐसी ही प्रवृत्ति आपकी सदा बनी रहेगी, और वारसेमें पाये हुए सद्गुण अपने उत्तराधिकारियों को वारसे में सौंपेंगे ऐसी दृढ आशा रखता हुआ मैं इस संक्षिप्त जीवनचरित्र को यहाँ ही समाप्त करता हूँ।

चरित्र का विस्तृत वर्णन 'स्वतन्त्र जीवनी' में देखें।

निवेदक

दुःखमोचन झा

" शुद्धिपत्र "

प्राक्कथन से शुरू

पृष्ठ	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
२	२	जरूरी	जरूरत
२	१८	आक्रमण	आक्रमणों
३	१०	करना	करना ही
३	१६	मूल में	मूल पाठ में
४	५	मौके	मौके पर
५	१६	सम्मतिदानदक्ष	सम्मति देने योग्य
६	२४	निण०	निर्ण०
१०	२०	विषियक	विषयक
१२	५	बे समझ से बातें	बे समझ जैसी बातें
१२	१६	हाने	होने
१३	६	पलन	पालन
१४	१६	संवरद्धार	संवरद्वार
१५	१३	चतुर्विंशति	चतुर्विंशति
१६	१६	शाघ्रही	शीघ्रही
१७	८	बाध	बोध
१८	४	सकते हैं	सकते हों
२२	१२	प्रतीक्रमण	प्रतिक्रमण
२३	२२	वाला	वाली
२७	१८	आलोईअ	आलोइय

पृष्ठ	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
२७	१८	भरूव	भरुव्व
२९	६	लगार हजाता	लगा रह जाता
३०	२१	विशद्धि	विशुद्धि
३३	१४	हफीम	अफीम
३५	४	पुरिमड्ड	पुरिमड्ढ
३७	१३	असनं	असणं
४०	९	अकुंचन	आकुञ्चन
४०	१७	ठाडी	ठण्ढी

तीसरे फार्म से

१	३	रुप	रूप

२ पूज्य श्री के नाम के स्थान में पूज्य श्री के अभिप्राय से ऐसा समझें,

२	४	पणासणे	पणासणो
३	७	इत	इस

सामायिक सूत्र मूल व अर्थ में

३	६	पाणकम्मणे	पाणक्कमणे
३	८	मकड़ा	मक्कड़ा
५	८	पायच्छित	पायच्छित्त
५	१०	काउसगं	काउस्सग्ग
५	१३	पित	पित्त
७	४	भंगे	भंग

पृष्ठ	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
८	१	सुवयं	सुव्वयं
९	४	प्रमु	प्रभ
९	७	प्रमु	प्रभु
९	१९	वींपक्ति के आगे—मुणिसुव्वयं-मुनिसुव्रतस्वामी को. यह पाठ छूट गया है।	
११	१०	भगवान्	भगवन् ?
१२	७	शक्क	सक्क
१२	१०	पुंडरियाणं	पुंडरीयाणं
१२	१६	विअट्ठ	विअट्ट
१२	१०	हरगंधवत्थीणं	वरगंधहत्थीणं
१२	१८	अपडिहय	अप्पडिहय
१२	२१	मव्वाह	मव्वावाह
१३	टिप्पणीमें	भस्स	मस्स
१४	४	धर्म्म	धम्म
१४	१२	धर्म्म	धम्म
१४	२२	छदम्थ	छद्म
१५	२	अणत	अणंतं
१५	२	नाम को	नाम
१५	११	वट्टि	वट्टि
१५	१८	नमवे	नवमें
१५	२०	व्रत	व्रत के
१५	२१	आदर ना	आदरना
१५	२२	न,	न—
१६	७	अणवट्टि	अणवट्टि

पृष्ठ	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१६	७	करण आए	करण आ
१७	१४	चरीत्ते	चरित्त
१८	७	गुणवया	गुणव्वया
१८	१७	उस्सुतो	उस्सुत्तो
१९	१	दुज्झाओ	दुज्झाओ
२०	१७	खंडिया	खंडियं
२०	२	मुत्तागमे	सुत्तागमे
२०	६	घोपहीणं	घोसहीणं
२०	७	अकालो	अकाले
२१	२	(काल में सज्झाय नहीं की हो,) इससे आगे— "अकाल में सज्झाय की हो" इसे भी पढ़ें,	
२१	७	सम्मत्त	सम्मतं,
२१	१९	मलीन	मलिन
२२	१०	वोच्छए	वुच्छेए
२२	१३	गाले हो	घाले हो
२२	१४	अहार	आहार
२३	१०	समवोवासएणं	समणोवासएण
२३	१३	कूडतुले कूडमाणे	कूडतुल-कूडमाणे
२३	१३	रुवग	रूवग
२४	३	एअस्स	एअस्स चउत्थस्स
२४	४	तंजहा से पहले "न समायरियव्वा"	
२४	५	इतरीय	इत्तरिय
"	"	अपरियागहिया	अपरिग्गहिया

पृष्ठ	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
२४	९	—इत्तिरीय	—इत्तरिक
"	१७	वत्थुपमाणा	वत्थुप्पमाणा
"	१८	धान्यपमा	धन्नप्पमा
२५	२०	पगणन्ते	पगणन्तो
२६	१	भोयणो अय	भोयणओ
"	३	सचित्ताहारं	सचित्ताहारे
"	६	कम्म—	कम्मा—
"	९	दन्तवाणिज्जे	दन्तवणिज्जे,—इसके आगे —"लक्खवणिज्जे, रस वणिज्जे, केसवणिज्जे, इन पाठों को पढें।
२६	९	जन्त पिल्लण	जन्तु पिल्लण
२६		दो रेखाओ के मध्य में (सचित को सचित्त और अहार को आहार) ऐसा सुधार कर पढें।	
२६	१७	तच्छ	तुच्छ
२७	५	सरहद हल डाग	सरदह तडाग
२७	११	संजुताहि-	संजुत्ताहि-
२८	७	से ८ तक—अशुभ योग वरताये	अशुभ वरताये
२८	११	दशमस्स	दसमस्स
२८	१९	नियम बहार	नियम बाहर
२८	२०	बहार	बाहर
२९	४	पोस होव वास्स	पोसहोव वासस्स

पृष्ठ	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
२९	११	अणाणु	अणाणु
२९	१६	नहीं पूजा हो	नहीं पूँजा हो
३०	३	परठां	परठा
,,	,,	परठने	परठके
,,	,,	वोसरामि	वोसिरामि
,,	८	सचित के स्थान में	सचित्त पढ़ें
,,	१५	दिराया	दिलाया
,,	२०	मारणांत्तिय	मारणांतिय
३१	१०	है प्ररूपणा	प्ररूपणा है
३१	२०	पोडा	पीडा
,,	१७	क्खान,	ख्यान,
३२	७	वितीसन्न—	तित्तीसन्न—
,,	१८	हटाकर	हटाकर
३२	२०	पडिकमामि	पडिक्कमामि
३५	१५	धम्मो	धम्मो
३७	१०	तेन्द्रिय	तेइन्द्रिय
,,	११	वेन्द्रिय	वेइन्द्रिय
,,	१९	अहार	आहार
३८	१३	कन्यासम्बन्धी ,	कन्यासम्बन्धी—
३९	१	छपे	छिपे
३९	१	झूठे उपदेश दिये हों इससे आगे झूठे लेख लिखे हों ऐसा पढ़ें,	

पृष्ठ	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
,,	३	थूल आदिएणा	थूल अदिएणा
,,	८	तच्छ	तुच्छ
४०	१८	विवर्जनरूप से आगे— मैथुन सेवन का त्याग, ऐसा पढ़ें,	
४३	२	खेत्तवुड्ढी—	खेत्तवुड्ढी,
४८	११	तंजहा	तंजहा—
५१	७	तंजहा,	तंजहा—
५३	१८	हविज्जा	हविज्ज
५५	१९	जानकर	जानकार
६३	१०	खमाताहूँ	खमताहूँ
६५	१२	अधिकीरीत	अधिक प्ररूपण
,,	१४	आसातना	आशातना
६६	१	इत्थीपुरुष	इत्थीपुरिस
७१	१०	मिच्छत्त	मिच्छत्तं
७१	१२	उवसंपज्जामि-से आगे "अमग्गं परियाणामि मग्गं उव संपज्जामि, ऐसा पढ़ें।	
७१	१९	रयहरणगुच्छ	रयहरणगुच्छग
७२	१९	च्छामि	इच्छामि
७४	५	और 'य'	और 'यं'
७५	१६	स्यकत्वकेपूर्व	सम्यक्त्व पूर्वक
अन्तिम पत्र के १म पृष्ठ में	८	अरह	अर
,, २रे पृष्ठ में	१	समणासा	समणासा

पृष्ठ पं०		अशुद्ध	शुद्ध
अन्तिम पत्र के २२ पृष्ठ में		३ हासक	पासक
,,	,,	१२ जब से आगे	थोड़ा या बहुत, पढ़ें
,,	,,	१५ सुमिति	समिति
,,	,,	१६ अप्रितवंध	अप्रतिबन्ध
,,	,,	२१ स्थानक	स्थानक को

नोट—"लेखन व संशोधन मे प्रमाद के चलते जो अशुद्धियाँ रह गई हैं, उन अशुद्धिओ को इस शुद्धिपत्र में सुधार दी हैं, पाठक अपनी अपनी प्रति को इस अशुद्धि दर्शक पत्र से सुधार लेवें,

टिप्पण—"चतुर्विंशतिस्तव में 'महिआ इस पद के स्थान में आवश्यक हारिभद्रीयवृत्ति के अन्दर 'मइआ' ऐसा पाठ दिया है, जिसका अर्थ वहाँ पर 'मयका' मेरे से ऐसा किया है।

कायोत्सर्ग में बोलने के पाठ आदि विधि में कुछ भेद भी है, वहां अपने अपने देश व सम्प्रदायानुसार विधि करें।

टिप्पण—"२रा पृष्ट १८ के—अतिचार चिन्तन पाठ में "इच्छामि ठामि, ऐसा प्रचलित है। किन्तु हारिभद्रीय वृत्तिवाले आवश्यक सूत्र के पृ० ७७८ पर 'ठामि, के स्थान में 'ठाइउँ, और इस सूत्र में आगे चल कर 'पडिक्कमिउँ,ऐसा भी पाठ माना गया है, जोकि अर्थ के विचार से विशेष योग्य मालुम पड़ता है, इसलिए यहाँ पर यही पाठ रक्खा गया है।

टिप्पण ३ रा—पृ० २८ के चौथाव्रत पाठ में—"एअस्स सदारसन्तोसिअ परदारविवमणवयस्स समणोवासएणं" ऐसा

भी कइ प्रतिओं में पाठ मिलता है, उपासक दशाङ्ग १म अध्ययन में भी चौथे व्रत का स्वरूप इसी तरह बताया गया है,

टिप्पण ४–"चोथे व पांचवें व्रतमें स्थूल शब्दका प्रयोग मध्य काल से मूल पाठ में प्रचलित होने पर भी आवश्यक हारिभद्रीय वृत्ति व उपासकदशाङ्ग के आनन्द श्रावकाधिकार तथा सूयगडांग सूत्र आदि के आधार से इस प्रतिक्रमण में नहीं रक्खा गया है"।

टिप्पण ५ वां—"खमा समण पाठ के विषय में विशेष सूचना—" दिवसो वइक्कंतो राइ वइक्कंता, पक्खो वइक्कंतो, चउमासी वइक्कंता, संवच्छरो वइक्कंतो, देवसिअं वइक्कमं, राइवइक्कमं चाउम्मासिय वइक्कमं, पक्खिअ वइक्कमं, संवच्छरि वइक्कमं, देवसियाए आसायणाए,राइय आसायणाए, पक्खिअ आसायणाए, चाउमासिय आसायणाए, संवच्छरिय आसायणाए।

दिन के प्रतिक्रमण में 'दिवसो' रात के प्रतिक्रमण में राइ, पक्ष के प्रतिक्रमण में 'पक्खो' चातुर्मास के प्रतिक्रमण में 'चाउम्मासी' वर्ष के प्रतिक्रमण में 'संवच्छरो' ऐसा क्रम से आगे भी सभी जगह पढ़ें।

टिप्पण ६ ठा—चोथे व्रत के पाठ में ब्रह्मचारी ऐसा पढ़ें—चउत्थे अणुव्वए कायाए सव्वं मेहुणं पच्चक्खामि जावज्जीवाए. दिव्वं दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि, मणसा वयसा कायसा माणुस तिरिक्ख जोणियं इगविहं एगविहेणं न करेमि कायसा। अतीचार पहले के समान समझें।

विज्ञ पाठकों से आवश्यक सूचना

इस प्रतिक्रमण के शुद्धि पत्र में दर्ज की गई गलतियों के अलावे जो गलतियाँ जिन्हे दिख पड़े, वे उनकी सूचना निम्न लिखित पता पर देने की कृपा अवश्य करें। जिससे दूसरा संस्करण सर्वाङ्ग पूर्ण हो सके। आशा है कि इस बात को सभी अपना पवित्र कर्तव्य समझेंगे।

प्रार्थी—

सक्रेटरी

जैन-रत्न पुस्तकालय सिंहपोल जोधपुर



श्रीमान सेठ लालचंदजी साहब मूथा गुलेदगुड

॥ श्री ॥

प्राक्कथन

अथवा इस प्रतिक्रमण की योजना का

उद्देश्य

साधुओं का समस्त जीवन ही शुद्ध धर्म के लिये समर्पित रहता है, तदनुसार स्थानकवासी साधुमार्गीय सम्प्रदाय के सन्तों का सम्मेलन जो कि १९९० के आरम्भ होते ही अजमेर में हुआ था, उस मुनि सम्मेलन में यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि आवश्यक सूत्र के मूलसूत्र एक होने चाहिए। वर्तमान मे मूर्ति पूजक श्वेताम्बर सम्प्रदाय के आवश्यक में जैसे बहुत से पाठ बढ़ गये हैं, वैसे श्वेताम्बर साधुमार्गीय शाखा में भी कतिपय गुजराती मारवाड़ी भाषाओं में पाठ परिवर्तन देखने में आते हैं, इससे आजकल आवश्यक सूत्र एक मिश्रित (मिली हुई) भाषा में हो गया है। अतएव इस अनवस्था से निकाल कर आवश्यक सूत्र को मौलिक अर्द्धमागधी भाषा में व देशीय भाषा में कर दिया जाय, इस प्रकार साधुमार्गीय शाखा मे एक प्रतिक्रमण हो सकता है।

उक्त विचार को कार्यरूप में लाने के लिए मुनि सम्मेलन ने ही चुने हुए, मुनियों की एक कमेटी बनाई। उस कमेटी में पूज्य

के उत्तर सन्तोषजनक व मार्ग दर्शक भी मिले, तदनुसार प्रश्नावली में वधारा किया गया। जैन दिवाकर तथा उपाध्याय पदवी विभूषित पं० मुनि श्री १००८ आत्मारामजी महाराज की तरफ से सन्देश आया कि अगर पण्डितजी यहाँ तक आ सकें तो मैं समस्त ही ठीक २ समझा दूँगा। सौभाग्यवश उसी मौके उधर से पं० भारत रत्न मुनि श्री १००८ शतावधानीजी महाराज, तथा पूज्य श्री १००८ अमोलक ऋषिजी महाराज एवं युवाचार्यजी (वर्तमान पूज्य) श्री १००८ काशीरामजी महाराज, लुधियाना पधारने वाले थे। इसी अवसर पर पण्डितजी भी वहाँ जा पहुँचे। अवकाश पाकर प्रस्तुत विषय पर परामर्श शुरू हुआ। उपयोगी पारस्परिक विमर्श के बाद चारों मुनिवरों की सम्मति प्रतिक्रमण के विषय में जो हुई, उसका सार यह है—"केवली प्रथम पद में ही बोले जायँ, यही योग्य है। तथा—प्रतिक्रमण मूल प्राकृत भाषा में और देशी भाषा में स्वतन्त्र प्रति पृथक् २ तैयार की जाय। अभ्यासी लोग अपनी २ श्रद्धा व शक्ति के अनुसार उन दोनों स्वतन्त्र प्रतियों में चाहे जिसे अपनावें। अर्थात् यह अच्छा और वह बुरा, इस तरह विवाद नहीं करें। ऐसा करने से सर्वथा सुरुचि और प्रचार सभी सुरक्षित रह सकते हैं। श्रमण सूत्र वालों के लिए श्रमण सूत्र और श्रावक सूत्र वालों के लिये श्रावक सूत्र हो तो बहुत ठीक होगा।

इस परामर्श के अनुसार उक्त मुनिवरों की सम्मति लेखबद्ध लेकर फा० शु० १० को पण्डितजी लुधियाने से पाली पूज्य श्री की सेवा में उपस्थित हुए। बाद देश चले गये। पूज्य श्री के विहार का समय होने से तत्काल यह कार्य रुका रहा। जब पूज्य श्री

[१००८ हस्तिमल्लजी महाराज] चतुर्मास के निमित्त पाली पधारे तब पुनः इस कार्य का प्रारम्भ शान्ति पाठशाला पाली के प्रधानाध्यापक जैन न्याय व्याकरण तीर्थ श्री चाँदमलजी के द्वारा कराया गया। प्राचीन अर्वाचीन हिन्दी गुजराती भाषा के प्रतिक्रमण पुस्तकों व उपासकदशांग सूत्र के आधार से प्रतिक्रमण पूर्ण सावधानी से शुद्ध लिखा गया और इस प्रकार प्रतिक्रमण लिखकर तैयार है, इसकी सूचना सभी मान्यमुनिवरों के पास दी गई। सब जगह से एक सा ही उत्तर मिला कि बिना देखे हम सब समीचीन या असमीचीन कैसे कह सकते हैं ? यह बात भी संगत (योग्य) थी। इसलिए ऐसा विचार किया गया कि कम से कम प्रतिक्रमणनिर्णय–समिति के निर्वाचित सदस्य-मुनिवरों की सेवा में तो दिखा ही दें। क्योंकि पूर्व प्रश्नावली के उत्तर में सम्मेलन के शान्ति रक्षक पं० शतावधानीजी महाराज की भी यह सूचना थी कि यह काम प्रतिक्रमण कमेटी के जरिये हो तो अच्छा, इस पर यह निश्चय हुआ कि सदस्य मुनिवरों के साथ ही मार्ग में सुविधा से मिलने वाले सम्मति दान दक्ष अन्य मुनिवरों को भी दिखाकर उनकी सम्मति ली जाय। तदनुसार प्रतिक्रमण लेखक पं० चान्दमलजी ने जाकर प्रायः सभी विज्ञ मुनिवरों को प्रतिक्रमण दिखाया और उन सबों की सम्मति ली।

सम्मति संग्रह के समय में मिली हुई विशेष सूचना से आचार्य श्री हरिभद्र सूरिकृत आवश्यक बृहद् वृत्ति के आधार से तथा प्राचीनतर आवश्यक की हस्तलिखित श्राद्धप्रतिक्रमणावचूरि के आधार से विशेष परम्परा को भी यथाशक्य रखते हुए शुद्ध मूल प्राकृत भाषा बद्ध व व्रतातिचार मूल व हिन्दी भाषा

उभय बद्ध इस प्रकार यह प्रतिक्रमण सम्पन्न किया गया है।

यथासाध्य श्रमसे, व्यय से, व भाषा विषयक बोध से एवं प्रतिक्रमण निर्णय समिति के सदस्य मुनिवरों की सम्मति से, तथा प्रतिक्रमण सम्बन्धी ऐतिहासिक खोज से यह प्रतिक्रमण तैयार हुआ है।

यह प्रतिक्रमण धर्म का प्राण है, श्रद्धा का प्रमाण है, जीवन सफलता का निदान है, सारशून्य इस संसार में सबसे बढ़कर निधान है। जो जीव अपने जीवन में इस प्रतिक्रमण को अपनाया या अपनाता है अथवा अपनावेगा नियम से उस जीव का कल्याण हुआ हो रहा है तथा होवेगा। किं बहुना वर्तमान काल के कर्कश तर्क में अधिकार रखने वाले विद्वानों से हमारी चुनौती है कि संसार की सारी धार्मिक दैनिक पद्धति से तुलना करके देखें कि ऐसी उदार भावनाओं से भरी दूसरी कौनसी धर्माराधना है?

इस प्रतिक्रमण के विषय में जितनी सम्मतियाँ प्राप्त हैं उन सब सम्मतिओं को यहाँ दर्ज करने पर पुस्तक का कलेवर अधिक बढ़ जायगा। अतएव यहाँ पर सिर्फ प्रतिक्रमण समिति के सदस्य मुनिवरों की सम्मतियां ही दी जाती हैं, क्योंकि ये विशेष महत्त्व की हैं और इनका निर्णय ही सर्वमान्य होना सम्मेलन से नियत है।

बम्बई, अहमदाबाद, रतलाम, कोटा, अमृतसर, लुधियाना, देहली, भीलवाड़ा, पीपाड़ इतने स्थानों पर विराजमान मुनियों को प्रतिक्रमण दिखाया गया, उनमें से प्रति० निर्ण० समिति के सदस्य मुनिवरों की सम्मतियां निम्न लिखित हैं:—

१. बम्बई—"पं० मुनिश्री सौभाग्यमल्लजी महाराज साहब की सम्मति—

आज ता० २०–१०–३५ को पाली से मास्टर चान्दमल्लजी आए। प्रतिक्रमण कमेटी के मुनिवरों की सम्मति से बने हुए प्रतिक्रमण को देखा। इस प्रतिक्रमण के पाठो को सिलसिलेवार जोड़ दिया जाय। और विशेष शुद्धता करनी हो तो आगम के जानकार मुनिवरों का ध्यान इधर खींचा जाय। यह प्रतिक्रमण अच्छा है और इससे संघ में शान्ति होने की पूर्ण संभावना है।

फरजियात पाठशालाओं में व विद्यालयो में कानफरेन्स की तरफ से सिखाने का प्रबन्ध किया जाय, प्रतिदिन आवश्यक करने वालों को सम्पूर्ण प्रतिक्रमण करना यह तो आवश्यकीय है ही, ऐसा महाराज श्री सौभाग्यमल्लजी महाराज साहब का मानना (मत) है। इति २०–१०–३५ बम्बई॥

२. बम्बई—(घाटकोपर) लघुशतावधानी मुनि श्री सौभाग्यचन्द्रजी महाराज की सम्मति—

मान्यवर मुनिवर्य ! पूज्य श्री हस्तिमल्लजी महाराज साहब।

आपकी प्रेषित प्रतिक्रमण कॉपी श्री चांदमल्लजी द्वारा प्राप्त हुई, सिर्फ मूल देखा है। और उसमें जहाँ अशुद्धियाँ हैं उनका संशोधन भी किया है। समयाभाव एवं शारीरिक अवस्था से अर्थ को पूरा नहीं देखा। इस विषय में सम्मति—"(१) प्रथम प्रश्न तो श्रमण सूत्र का है। श्रमण सूत्र के सम्बन्ध में कई मुनिराज रखने में तो कई निकाल देने में कट्टर हैं, मेरी

राय इस विषय में यह है कि श्रमण सूत्र पाठ में भले ही रहे परन्तु उसका उपयोग व्रत (पौषध-वगैरह) के दिन ही हो। (२) दूसरी बात है देश देश की निराली प्रथा। उसका उपाय तो यही है कि सभी जगह मूल पाठ ही रखना चाहिये जैसा कि (इस प्रतिक्रमण में) लिखा है। (३) खामणा (वन्दना) के विषय में भिन्न भिन्न देशो मे भिन्न भिन्न प्रथा है। उसको छोड़कर सिर्फ पञ्चपरमेष्ठी की प्राकृत स्तुति ही रखना, इतनी कठिनाइयाँ दूर होने पर सर्वमान्य बन सकेगा। ऐसा मेरा मन्तव्य है। [मंजूर हो जाने के बाद कॉन्फरेन्स की ओर से ही प्रतिक्रमणसूत्र का प्रसिद्ध होना ठीक रहेगा] उस वक्त··सेवा मुझे प्राप्त होगी तो देखा जायगा। इति।

"सन्तबाल" का वन्दन सुख शान्ति पृच्छासह।

३. अहमदाबाद—'लिम्बडी सम्प्रदायना महाराज श्री मद्गलजी स्वामी ना शिष्य मुनि श्यामजी म० नी सम्मति—

'पूज्य महाराज श्री रत्नचन्द्रजी महाराज नी सम्प्रदायना पूज्य श्री हस्तिमल्लजी महाराजे समग्र हिन्दना श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन श्रावक भाइओ माटे एकज प्रकारनुं श्रावक प्रतिक्रमण लखी तैयार करेल छे ते जोता मोटाभागे ठीक लागे छे, तोपण जेटला सम्प्रदायना अलग अलग प्रतिक्रमण चालता होय ते सर्वे तपासी बहुमते अथवा आगमानुसार जे जे होय तेने पहेलुं स्थान आप्यो छे ते ठीक छे। व्रतों ना अतिचार पहेला अलग जणावेल छे

तेना करतां व्रतोंनी साथेज होवाथी पुनरुक्ति दोष लागे ने पुस्तक का पूर पण वधे नहीं ।

आ श्रावक प्रतिक्रमण श्वेताम्बर स्थानकवासी समाजमां जे जे गीतार्थ मुनि महाराजो छे, तेमने वतलावी अभिप्राय मेलवी सर्वानुमते बहार पडवा थी श्रावक प्रतिक्रमण एकज प्रकार नुंथवाथी समाज ने मोटोलाभ थसे । आमा गुजराती दरियापुरी आठ कोटी तथा कच्छी आठ कोटी सम्मत थाय तो सम्पूर्णता कहेवाय एटलीज संवत् १९९१ आश्वि० शु० ९ शनि ।

४. लुधियाना (पंजाब)—"उपाध्यायजी मुनि श्री १००८ आत्मारामजी महाराज साहब की शुभ सम्मति—

मगलाचरण के लिये श्री नन्दीसूत्र की पहले की दो गाथा, और उसके साथ आवश्यक की २ गाथा होनी चाहिए । मूल में "महिया" कोष्ठक में "मइआ"—मयका—मया ऐसा लिखा जावे, आवश्यक प्रतिक्रमण सूत्र के विषय में मेरी यह सम्मति है कि पं० बेचरदासजी द्वारा इसकी प्राकृत भाषा शुद्ध करा लेनी चाहिए । अन्य सब आप ने विशेष श्रेष्ठ प्रकार से प्रतिपादित किया है । श्रमण सूत्र परिशिष्ट में ही रहना चाहिए । जिसकी इच्छा हो सो पढ़े । अन्य विषय सब तथ्य है । सुज्ञेषु किं बहुना लिखनेन ।

५. देहली—"पूज्य श्री १००८ अमोलक ऋषिजी महाराज की सम्मति—

पूज्य श्री हस्तिमलजी महा० की तरफ से आवश्यक सूत्र की

प्रति मास्टर चांदमल्लजी से मुझे प्राप्त हुई। पठन कर बहुत खुशी हुई। क्योंकि अब इसमें श्रमणसूत्र के पाँचों पाठ मिलाकर पूर्ण आवश्यक सूत्र बना दिया है, किन्तु श्रमणसूत्र का पाठ जो अलग लिखा हुआ है उसे यथा स्थान स्थापित कर दिया जाय अर्थात् मंगलादिक पांचो सूत्र के आगे और खमासणा तथा पांचों पदों की वन्दना के पीछे यों मध्यमें श्रमणसूत्र के पांचों पाठों को स्थापन कर दिये जावें तो यह आवश्यक सूत्र हमें मंजूर है। ऋषि सम्प्रदायी श्रावक श्राविका इस प्रकार प्रतिक्रमण कर सकेंगे। इति साधुमार्गीय सारी समाज मे सम्प का इच्छुक अमोलक ऋषि ॥ सबजी मंडी देहली का० कृ० ५। १९९१।

६. पीपार सीटी—"मुनि श्री छगनलालजी महाराज साहब की सम्मति—

आप पं० मुनि श्री १००८ चोथमल्लजी महाराज साहब के साथ ही पीपार चातुर्मास में विराजमान थे। आपकी सम्मति का सार यह मिला कि जो जिस तरह धार्मिक प्रथा प्रचलित है उसे उसी तरह रखना उचित है। अगर देशकाल के अनुसार परिवर्तन करना ही हो तो सब समक्ष मिलकर पूर्ण विचार विनिमय के बाद ही करना चाहिये अन्यथा नहीं। नोट—[illegible]। [illegible] समस्त भारतवर्ष के साधु मार्गीय साधुओं के सम्मेलन में प्रतिक्रमण की एकता विषियक ठहराव पास हो गया, इसके लिये समिति तक बनगई फिर भी इसके परिवर्तन में विचार विनिमय बाकी ही रहा! [illegible]।

इस प्रकार प्रतिक्रमण समिति के सदस्यों के एवं अन्य मान्य

मुनिवरों के मत से संशोधित प्रतिक्रमण प्रकाशित होना चाहिये इस विचार से प्रेरित होकर श्रीमान् सेठ श्री लालचन्दजी साहब गुलेजगढ़ निवासी की द्रव्य सहायता से जैन रत्न पुस्तकालय सिंहपोल जोधपुर ने इस प्रतिक्रमण को प्रकाशित किया है ।

एकता की प्रवृत्ति का निमित्त हठ त्याग ही है—तदनुसार श्वे० साधुमार्गीय जैन बन्धुओं ने अगर सर्व सम्प्रदायों की एकता रूपी महान् लाभ को लक्ष्य करके किंचित् भी उदार भाव से इस प्रतिक्रमण को अपनाया तो पूज्य श्री का अनेक आदर्श पुस्तकावलोकनश्रम तथा दाता का धन व्यय और लेखक का समय सभी भूरि भूरि सफलता के भागी बनेंगे । शुभमधिकम् ।

'सुज्ञेषु किं बहुना'

इसे भी पढ़ लीजिये—

'संसारे शतशः सारे' सारात् सारतरं त्रयम् ।
दुर्गतेषु दयालुत्वं हठ-त्यागो गुण-ग्रहः ॥१॥

॥ श्रीः ॥

भूमिका।

महात्माओं की बात में एक ऐसी चुम्बक शक्ति होती है कि वह नीरस हृदय में भी सरसता का संचार और नास्तिकता में भी आस्तिकता का प्रचार कर देती है। वर्तमान काल में एक चमत्कार ऐसा विचित्र देख पड़ता है कि लोग अपने को चतुर चालाक समझते हुए भी वे समझ से बात करते हैं। बिलकुल धर्माचरण मे उनका चित्त नहीं लगता है। उलटे चोर कोतवाल को डाटें, वाली कहावत वे तब सार्थक करते हैं जब उन्हे धर्माचरण के लिये कहा जाय। उनकी कुतर्क-प्रणाली ऐसी बुरी होती है कि उन्हे अपने साथ ही दूसरों को भी नास्तिक बनाने में आनन्द आता है।

अतएव ऐसे लोगो के लिये जैनागम के प्रख्यात विद्वान् आदर्श साधु उपाध्यायजी श्री १००८ आत्मारामजी महाराज साहब से ही इस प्रतिक्रमण की भूमिका लिखाई गई है,

वह भूमिका निम्नलिखित है:—

"नमोत्थुणं समणस्स भगवओ महावीरस्स"

इस अनादि अनन्त संसार सागर से पार होने के लिये सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान, सम्यक् चारित्र ही कारण है, इन्हीं तीनों की आराधना से आत्मा स्व-पर का कल्याण कर सकती है।

षड्द्रव्य, नवतत्त्व, चार निक्षेप, सप्त नय और सप्तभङ्गी के स्वरूप को श्रद्धना, यथार्थ जानना, और आचरण मे लाना ही सम्यग दर्शन व सम्यग् ज्ञान है। सम्यक् चारित्र के दो भेद हैं, सर्वव्रत और देशव्रत, इन दोनों के नियमोपनियमों को निरतिचार (निर्दोष) पालन करना यह मुमुक्षु आत्मा का मुख्य कर्तव्य है। चारित्र को निरतिचार पालन कराने में सहायक नियमोपनियमों के समूह को आवश्यक माना गया है जैसे कि स्थानाङ्ग सूत्र के द्वितीय स्थान में श्रुतज्ञान का वर्णन करते हुए श्रुत ज्ञान को अङ्गसूत्र व अनंगसूत्रों में वर्णन किया है। अनंग प्रविष्ट (गणधर पूर्वधरादिकृत) सूत्रों का वर्णन करते हुए आवश्यक सूत्र व उससे भिन्न सूत्रों का भी वर्णन किया गया है। इसी प्रकार नन्दीसूत्र में भी श्रुतज्ञान का वर्णन करते हुए आवश्यक सूत्र का वर्णन किया गया है। अनुयोगद्वार सूत्र में तो चार निक्षेप और सात नयों द्वारा आवश्यक सूत्र की बड़ी व्याख्या की गई है।

इस प्रकार अनेकसूत्रों में आवश्यक सूत्र का विशद वर्णन इसी लिये किया गया है कि यह आत्मशुद्धि मे मुख्य साधन है, भावावश्यक के द्वारा आत्मा में दिव्य आनन्द का संचार होने लगता है। अतएव अनुयोग द्वार सूत्र में साफ कहा है कि यह भावावश्यक, साधु साध्वी श्रावक और श्राविका को सुबह साम में अवश्य करना चाहिए।

द्वादशांग वाणी के साथ ही आवश्यक का प्रादुर्भाव हुआ है, क्योंकि आवश्यक सूत्र में सम्यक् चारित्र का वर्णन सविस्तार किया गया है। जैनागम में यह बात साफ है कि भगवान् ऋषभदेव स्वामी और श्रमणभगवान् महावीर स्वामी के तीर्थ में ५

महाव्रत और सप्रतिक्रमण धर्म नियत होता है, शेष २२ तीर्थङ्करों के तीर्थों में चार ही महाव्रत होते हैं, और प्रतिक्रमण दोष लगने पर ही। अतएव भगवान् महावीर स्वामी के मुनिओं को आवश्यक दो वक्त अवश्य कर्त्तव्य कहा गया है। यहां पर प्रश्न यह होता है कि यदि आवश्यक सूत्र की उत्पत्ति द्वादशांगी वाणी के साथ ही हुई है तब इसके मौलिक सूत्र कौनसे हैं ? और इसमें क्या क्या वर्णित है ? इसके उत्तर में कहा जाता है कि, साधु के आवश्यक सूत्र में श्रमणसूत्र, नमस्कार मन्त्र, तिक्खुत्तो का पाठ, इच्छामि, ठामि, इच्छाकारेण, तस्स उत्तरीकरणेणं लोगस्स उज्जोयगरे, णमोत्थुणं का पाठ, इच्छामि खमासमणो इत्यादि, ये सब मूलसूत्र ही प्रतीत होते हैं। कारण यह कि उक्त पाठों में, आवश्यक क्रियाओं के विषय ही सविस्तर वर्णित हैं।

इसी प्रकार श्रावकसूत्र में १२ व्रतों के विषय वर्णन करने वाले पाठ और नमस्कारादि ये सब मूल सूत्र ही सिद्ध होते हैं। कारण यह कि समवायांग सूत्र में, व स्थानांग सूत्र के नववें स्थान में प्रश्न व्याकरण सूत्र के पांचवें संवरद्वार में जो एक अङ्क से लेकर ३३ अङ्क तक चारित्र्य विषय का वर्णन किया है, तथा नमो चउवीसाए तित्थयराणं के पाठ का प्रमाण भगवतीसूत्र के नवमें शतक के ३३ वें उद्देश मे आया है। जैसे कि पाठ है— "एवं खलुजाया णिग्गंथे पावयणे सच्चे अणुत्तरे केवले जहा आवस्सए जाव सव्व दुक्खाण मंतं करेइ" सू० ३८ यह जमाली के प्रति उसके माता पिता का उपदेश है कि हे पुत्र! यह निर्ग्रंथ प्रवचन सत्य अनुत्तर केवल यावत् सर्वदुःखों का अन्त करने वाला है। जैसा कि आवश्यक सूत्र में कहा है। ये सब पाठ आवश्यक

सूत्र में भी विद्यमान हैं, इससे आवश्यक सूत्र की अति प्राचीनता सिद्ध होती है। साथ ही यह भी सिद्ध होता है कि गृहस्थ भी श्रमणसूत्र का पूर्ण ज्ञान रखते थे। जैसे ही श्रमण सूत्र की प्राचीनता में प्रमाण है ठीक ऐसे ही श्रावक सूत्र के विषय में भी प्रमाण मिलते हैं जैसे कि श्रावकसूत्र में श्रावकों के १२ व्रत और उनके अतिचारों का वर्णन है, वही वर्णन उपासक दशांग सूत्र के प्रथमाध्ययन में विद्यमान है, तथा १२ व्रतों का नामोल्लेख अंग-सूत्र वा अनंगसूत्रो में पुनः २ आए हुए हैं।

इसलिए श्रावक सूत्र श्रुतज्ञान से युक्त हैं। इसी प्रकार अनुयोग द्वार सूत्र के श्रुत ज्ञानाधिकार में यह प्रतिपादन किया है कि श्रुतज्ञान आवश्यक सूत्र में भी प्रविष्ट है।

आवश्यक सूत्र छः अध्ययनो से युक्त है जैसे कि सामायिक १ चतुर्विंशति स्तुति २ वन्दना ३ प्रतिक्रमण ४ कायोत्सर्ग ५ प्रत्याख्यान ६। समभाव से की गई स्तुति कर्मक्षय का कारण होती है। इसी लिये सामायिक के पश्चात् चतुर्विंशतिस्तव नामक अध्ययन रखा गया है। जब हृदय के विशुद्ध भावों से स्तुति की जाती है तब ही आत्मा मार्दव भाव से झुक कर वन्दना के लिये उद्यत होती है, इसीलिये वन्दना नामक तीसरा अध्ययन रखा गया है। वन्दना में निरत आत्मा ही अपने गृहीत नियमों के अतिचारों का सर्वथा चिन्तन कर सकती है अतएव प्रतिक्रमण (पाप स्थानों से परावर्तन रूप) चौथा अध्ययन रखा गया है प्रतिक्रमण शब्द का मुख्य अर्थ पीछे हटना है सो जब आत्मा क्षयोपशमभाव से निकल कर उदयभाव की ओर झुकने लगती

आवश्यक के ६ अध्ययन-

है, तब उसे उदयभाव से हटा कर फिर पीछे—क्षयोपशमभाव में लाना यही प्रतिक्रमण शब्द का मुख्य उद्देश है। अतिचारों की विशुद्धि के लिये ही आत्मविचार में निमग्न होजाना इसी का नाम कायोत्सर्ग कहते हैं, यह पांचवां अध्ययन है। कायोत्सर्ग से ही आत्मा अपने भावों की विशुद्धि करती हुई स्वरूप में प्रविष्ट हो सकती है। स्वस्वरूप में प्रविष्ट होने वाली ही आत्मा त्यागयुक्त हो सकती है अतएव प्रत्याख्यान नामक छठा अध्ययन अन्त मे रखा गया है। इस प्रकार परस्पर कार्य-कारण-भाव से सम्बन्धित छः अध्ययनों का समावेश आवश्यक सूत्र मे किया गया है। पूर्वोक्त स्वरूप आवश्यक सूत्र के सविधि दोनों समय करने से आत्मा का

आवश्यक सूत्र के करने न करने से लाभ हानि

विकाश होने लगता है, उपयोग सहित आवश्यकीय आराधना से रत्नत्रय की प्राप्ति होने लगती है, और दिन रात के कर्तव्यों पर नजर रखते हुए इस तरह शीघ्र ही हेय, ज्ञेय, उपादेय इन तीनो का पूर्ण भान होजाता है, जिससे आराधक आत्मा शीघ्र ही उपादेय तत्त्वों में प्रयत्न शील बन जाता है। ठीक इसके विपरीत आवश्यक न करने वालों की दशा होती है, अर्थात् न वे रत्नत्रय के आराधक ही बन सकते हैं, या न सम्यक् चारित्र के साधक ही होते हैं, अतएव आवश्यक सूत्र उभय लौकिक सुखेच्छुओं के लिये अवश्य करणीय है।

इस प्रसंग में बहुत से भोले भाई यह कहते हैं कि जब मैंने व्रत ही नहीं लिये फिर मुझे आवश्यक करने से क्या मतलब ? उन भद्रात्माओं से मेरा यह समाधान है कि आवश्यक सूत्र में ज्ञान दर्शन चारित्र में लगे हुए दोषों की आलोचना है, सो व्रती

और अव्रती दोनों के लिये भाव विशुद्ध्यर्थ अवश्य कर्तव्य है, और विना विलम्ब देशव्रतों के धारण की भावना उत्पन्न करनी चाहिए। जैसे मास खमण करने वाले मुनिओ को आहारादि नहीं करने से अतीचारादि न लगने पर भी आवश्यक अवश्य कर्तव्य होता है इसी प्रकार श्रावक श्राविकाओ को व्रत न होने पर भी आवश्यक अवश्य करना ही चाहिए।

आर्हतमत के आवश्यक में विशेषता यह है कि दोनों समय विधिपूर्वक करने से गृहस्थों को अपनी क्रियाओं का बोध भली भांति होता रहता है, अन्य उपासनाओं से बढ़कर इस आवश्यक में आत्मविकाश के लिये मसाला पर्याप्त है, इस प्रकार छः अध्ययनों के समान लौकिक व आत्मिक विकाश का समावेश अन्य किसी भी उपासना में नहीं है, अन्य धर्मों में जो उद्देश्य अनेक धर्म ग्रन्थों को पढ़ने से, उपदेश-श्रवण से, व सत्संगति से नहीं सिद्ध होता है वह उद्देश्य जैन मत के सविधि आवश्यक करने से ही भली भांति सिद्ध होता है आवश्यक की आराधना से क्या नहीं मिलता है? भावना से आत्मा निज कल्याण कर सकती है, १२ व्रतों के ६० अतिचार गृहस्थाश्रम के तमाम नियमों को सूचित करते हैं. इस प्रकार सर्वथा लाभ कहीं भी अन्य उपासनाओं में नहीं मिलते हैं। अन्य उपासनाओं में जहां आत्मा को विषयाभिमुख बनाने का बीज है तहां आवश्यक में आत्म-रमणता का भाव भरा है। अतः सर्वथा सर्वातिशयत्व इस आवश्यक में विचारोत्तर सिद्ध होता है।

अन्यमत की उपासनाओं से आवश्यक की विशेषता

नित्य कर्त्तव्य सूत्रपाठ देश कालानुसार सदा संक्षिप्त ही

होते हैं जिससे कि बालवृद्ध रोगी सभी सर्वत्र सुभीता से पढ़ सकें।

एक प्रतिक्रमण का विषय

इस उद्देश्य से इस आवश्यक के छः अध्ययन भी संक्षिप्त ही रखे गये हैं। ये इतने बड़े नहीं हैं जो नियत स्थान पर ही पढे जा सकते हैं। कालक्रम से अथवा रुचि के वैचित्र्य से या देश भेद से जो इस आवश्यक सूत्र में पाठ भेदादि यत्र तत्र उपलब्ध हैं उस भेद को मिटाने के लिये अजमेर के मुनि सम्मेलन में यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि आवश्यक सूत्र के मूल पाठ एक होना चाहिये। जैसे श्वेताम्बर मूर्ति पूजक समाज में आवश्यक के बहुत से पाठ बढ़ गये हैं, इसी प्रकार श्वेताम्बर साधु मार्गीय शाखा में भी कतिपय गुजराती मारवाड़ी आदि भाषा में भी पाठ देखने में आते हैं। जिससे आवश्यक एक मिश्रित भाषा में हो गया है, अतः मौलिक अर्द्ध मागधी भाषा में आवश्यक सूत्र हो तो स्थानक वासी शाखा मे एक प्रतिक्रमण हो सकता है।

आनन्द का विषय है कि हमारे सुहृद्वर्य मरुस्थलीय आचार्य वर्य पूज्य श्री हस्तिमल्लजी महाराज ने इस काम को अपने हाथ में लिया। कतिपय प्राचीन आवश्यकों की प्रतिओ के आधार से इस मौलिक आवश्यक सूत्र के शुद्ध पाठों का संग्रह कर जनता पर परमोपकार किया है। इस आवश्यक सूत्र में उत्तराध्ययन सूत्र के २९ वें अध्ययन में आए हुए छः आवश्यक सूत्र पाठों के क्रम के अनुसार पाठ संग्रह है। क्योंकि उत्तराध्ययन सूत्र के २९ वें अध्ययन में छः आवश्यक पाठों के फलादेश के विषय में प्रश्नोत्तर है। जो कि जिज्ञासुओं के लिए अवश्य पठनीय है।

इस समय प्रायः अनेक स्थलों से आवश्यक सूत्र मुद्रित हुए

हैं, किन्तु उनमें-परस्पर कतिपय पाठ भेद देखने में आता है। सो जिज्ञासुओ के लिए यह प्रसन्नता का विषय नहीं है, अब इस प्रतिक्रमण के द्वारा पाठ भेद मिट कर एक आम्नाय हो सकती है क्योंकि वर्तमान काल के विद्वान लोग अन्वेषण शील विशेष हैं, अतएव वे ग्रन्थ के विषय की मौलिकता जानना चाहते हैं जैसे श्वेताम्बर मूर्तिपूजक पञ्च प्रतिक्रमण सूत्रों के हिन्दी अनुवाद में पण्डित सुखलालजी ने उसकी प्रस्तावना में स्वबुद्धि से मौलिक सूत्रों का अन्वेषण किया है। वे प्रस्तावना के ४२ पृष्ट पर इस प्रकार लिखते हैं—"आवश्यक सूत्र की परीक्षण विधि" मूल आवश्यक में कौन कौन सूत्र सन्निविष्ट हैं? इसकी परीक्षा अवश्य कर्तव्य है। आज कल साधारण लोग यही समझते हैं कि आवश्यक क्रिया में जितने सूत्र पढे जाते हैं वे सब मूल "आवश्यक" के ही हैं। मूल के आवश्यक पहचानने के लिए दो उपाय हैं। पहला यह है कि जिस सूत्र के ऊपर शब्दशः किं वा अधिकांश शब्दों की सूत्र स्पर्शिक निर्युक्ति हो वह सूत्र मूल आवश्यक गत हैं, और दूसरा उपाय यह है कि जिस सूत्र के ऊपर शब्दशः किं वा अधिकांश शब्दों की सूत्र स्पर्शिक निर्युक्ति नहीं है, पर जिस सूत्र का अर्थ सामान्य रूप से भी निर्युक्ति में वर्णित है या जिस सूत्र के किसी किसी शब्द पर निर्युक्ति है अथवा जिस सूत्र की व्याख्या करते समय आरम्भ में टीकाकार श्री हरिभद्रसूरि ने—"सूत्रकार आह" "तच्चेदं सूत्रम्" इत्यादि उल्लेख किया है वह सूत्र भी मूल आवश्यकगत समझना चाहिये।

इस परीक्षा के अनुसार सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव तथा वन्दना व व्रतातिचार के पाठ जो कि वर्त्तमान में साधु मार्गीय

सम्प्रदाय में प्रचलित हैं, वे मौलिक ही जचते हैं। पंडित सुखलालजी ने लिखा है कि आज कल की समाचारी में जो प्रतिक्रमण की स्थापना की जाती है वहाँ से लेकर "नमोऽस्तु वर्द्धमानाय" की स्तुति पर्यन्त में ही छः आवश्यक पूर्ण हो जाते हैं अतएव यह तो स्पष्ट ही है कि प्रतिक्रमण की स्थापना के पूर्व किये जाने वाले चैत्य वन्दन का भाग और "नमोऽस्तु वधर्मानाय" की स्तुति के बाद पढ़े जाने वाले सज्झाय स्तवन शान्ति आदि आवश्यक के बहिर्भूत हैं। अतएव इनका मूल, आवश्यक सूत्र में न मिलना स्वाभाविक ही है। भाषा दृष्टि से देखा जाय तो भी यह प्रमाणित है कि अपभ्रंश संस्कृत हिन्दी व गुजराती भाषा के गद्य पद्य मौलिक हो नहीं सकते। क्योंकि, सम्पूर्ण मूलावश्यक प्राकृत भाषा में ही है। प्राकृत भाषामय-गद्य पद्य में से भी जितने सूत्र उक्त दो उपायो के अनुसार मौलिक बनाये गए हैं उनके अलावा अन्य सूत्र को मूल आवश्यक गत मानने का प्रमाण अभी तक हमारे ध्यान में नहीं आया। अतएव यह समझना चाहिये कि छः आवश्यकों में ७ लाख, १८ पापस्थान, आयरिय उवज्झाय, वेयावच्चगराणं, पुक्खर वर दीवड्ढे, सिद्धाणं बुद्धाणं, सुयदेवया भगवई आदि थुई, और नमोऽस्तु वर्द्धमानाय, आदि जो जो पाठ बोले जाते हैं वे सब मौलिक नहीं हैं। तथा प्रतिक्रमण सूत्र पृ० १३५ लघु शान्ति स्तव के नोट में पंडितजी लिखते हैं कि— "इसकी रचना नाड्डूल नगर में हुई थी। शाकम्भरी नगर में महामारी का उपद्रव फैलने के समय शान्ति के लिए प्रार्थना की जाने पर बृहद्गच्छीय श्री मानदेव सूरि ने इसको रचा था। पद्मादि चारों देवियां उक्त सूरि की अनुगामिनी थीं, इसलिये इस स्तोत्र

के पढने सुनने और इसके द्वारा मन्त्रितजल छिटकने आदि से शान्ति हो गई। इसको दैवसिक प्रतिक्रमण में दाखिल हुए करीब ५०० वर्ष हुए हैं"। इसी प्रकार पण्डितजी ने अपनी प्रतिभा से प्रत्येक आवश्यक के सूत्रों का अन्वेषण किया है। किन्तु साधु मार्गीय सम्प्रदाय में जो षडावश्यक वर्तमान में उपलब्ध हैं उसमें उतना परिवर्तन नहीं हुआ जितना कि मन्दिर मार्गिओं के षडावश्यक में देखा जाता है।

उपयोग पूर्वक किया हुआ आवश्यक ही आत्म विकाश का मुख्य साधन है, इसी को भावावश्यक कहते हैं। इसका दूसरा नाम प्रतिक्रमण भी है।

व्याख्या प्रज्ञप्ति सूत्र, ७ वां शतक दूसरे उद्देशक के सूत्रानुसार सर्व मूल गुण व सर्व उत्तर गुण, तथा देश मूल गुण व देश उत्तर गुण रूप पचखाणों की व्याख्या ही आवश्य कसूत्र में साधु व श्रावक के व्रत व संलेखन के पाठों से की गई है।

अतएव चतुर्विध श्री संघ को आत्मिक उन्नति के लिए अवश्य कर्तव्य होने से ही इसका नाम आवश्यक ऐसा गुण निष्पन्न रखा गया है। अतएव इस आवश्यक विधि का सदनुष्ठान कर प्रत्येक व्यक्ति को निर्वाणपद की प्राप्ति अवश्य करनी चाहिए।

भवदीय

उपाध्याय जैनमुनि आत्माराम

जैन धर्म दिवाकर (पंजाबी)

प्रतिक्रमण की आवश्यकता जैसे जीवन के लिए पवन की है ठीक इसी तरह जैन धर्म में प्रतिक्रमण—षडावश्यक की है। यों तो सभी धर्म में उपासना सारभूत ही है; किन्तु जैन धर्म की प्रतिक्रमण रूप उपासना की योजना सर्व श्रेष्ठ है, क्योंकि इसमें तमाम आगमो का निचोर और अपनी प्रवृत्ति मात्र की परीक्षा बहुत उत्तम रीति से कीगई है। धार्मिक ग्रन्थ ही नहीं किंतु नीति भी कहती है कि—" प्रत्यहं प्रत्यवेक्षेत नरश्चरितमात्मनः। किन्नु मे पशुभिस्तुल्यं किन्नु सत्पुरुषैरिति ॥ अर्थात् हरएक मानव का कर्तव्य है कि प्रतिदिन अपने कृत कार्यों की परीक्षा करे अर्थात् अपने को आप देखे कि मैंने जो आज कार्य किए हैं, उनमें पशु के समान कितने हैं और सत्पुरुषों के समान कितने हैं ? प्रतीक्रमण करने से ही इस नीति नियम का पालन हो सकता है।

विषय-प्रवेश

अर्थात् षडावश्यकों के स्वरूप और महत्त्व

(१) सामायिक (२) चतुर्विंशतिस्तव, (३) वन्दना (४) प्रतिक्रमण (५) कायोत्सर्ग व (६) प्रत्याख्यान इन नामों से छः आवश्यक हैं।

आवश्यकों के अर्थ—"समस्य आयो लाभः समायः, समायो यत्र भवति तत्सामायिकम्, सामायिक शब्द की सिद्धि में सम-अर्थात् क्रोधादिभावों की मन्दतारूप समता का आय—लाभ होना इसे सामायिक कहते हैं, यह समभाव का लाभ जिस क्रिया से होता है उसे सामायिक व्रत कहते हैं। इस सामायिक का अर्थ इस प्रकार भी करते हैं—"समभावो यत्राध्ययने वर्ण्यते, तत्तेन वर्ण्यमानेन अर्थेन निर्दिशति सामायिकमिति" राग द्वेष के वश न होकर समभाव अर्थात् सभी जीवों के ऊपर आत्मवत् भाव रखने को तथा जिस अध्ययन में सम भाव का वयान किया गया हो उसको भी सामायिक कहते हैं। इस सामायिक व्रत का वर्णन आचार्यों ने इस प्रकार किया है–'त्यक्तार्त रौद्र ध्यानस्य, त्यक्त सावद्य-कर्मणः। मुहूर्त समतायास्तं, विदुस्सामायिक-व्रतम्" अर्थात् जहाँ आर्तध्यान और रौद्र ध्यान का त्याग हो और सभी सावद्य कर्म्मों का परिहार हो इस प्रकार समता का जो मुहूर्त वीते उसे सामायिक व्रत कहते है, इसमें जैसे आन्तरिक–हार्दिक पवित्रता की आवश्यकता है, वैसे ही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव-सम्बन्धी पवित्रता भी जरूरी है, द्रव्य से वस्त्र, आसन, मुख वस्त्रिका, पूजनी आदि निर्विकार हो याने ग्लानि या विस्मय पैदा करने वाला न हो, जहाँ

तक सम्भव हो साधु-समुचित भेष ही सामायिक व्रत का पोषक है, इसमें किसी प्रकार की मलिनता, अथवा आडम्बर नहीं होने चाहिए। वस्त्र ऊन के हों चाहे सूत के किन्तु उनमें चर्बी आदि महारम्भ-क्रिया का सम्बन्ध नहीं होना चाहिए।

सामायिक व्रत की आराधना में द्रव्य क्षेत्र काल भाव रूप अनुकूल साधनों की भी आवश्यकता है अर्थात् सामायिक में शास्त्र से निषिद्ध ऐसी आत्मा को घृणा पैदा करने वाली मलिनता का सर्वथा परिहार होना चाहिए। व्रण आदि के चलते मलिनता की हालत में सामायिक व्रत नहीं करने का विचार योग्य नहीं, क्योंकि सामायिक तो समभाव सम्बन्धी क्रिया है, जिसे रोगी, शोकी, दरिद्र, धनी, मूर्ख, विद्वान् सभी कर सकते हैं, सिर्फ चित्त जिससे अशान्त उद्विग्न न हो, इस तरह की निर्मलता अवश्य आवश्यक है, साथ ही सामायिक समय की वेशभूषा विकारमयी घृणामयी व विलासमयी एवं चित्त की चञ्चलता पैदा करने वाली न हो मतलब यह कि सौम्य हो, शान्त हो, शुचि हो और साधुसमुचित हो, पहरना, ओढ़ना, आसन, मुखवस्त्रिका, पूंजनी आदि धर्मोपकरण के अलावा और कुछ न हो। सामायिक व्रत-ग्रहण के समय गुरु आदि को सविधि वन्दनाकर मुखवस्त्रिका का प्रतिलेखन करना चाहिए, बाद मुंह पर मुख-वस्त्रिका बांध कर विधिपूर्वक सामायिक व्रत लेना चाहिये, स्थान ऐसा हो जहाँ शान्ति भङ्ग करने के साधन विकारीभाव, या कलह कोलाहल नहीं हो, अर्थात् स्त्री, पशु, क्लीव से रहित शान्त एकान्त हो। २। समय भी ऐसा हो कि जिसमें चित्त-वृत्ति स्वस्थ हो, विक्षेप का कोई कारण नहीं हो, प्राय: सन्धि-

समय जैसे कि प्रभात, मध्यान्ह व सायङ्काल ये तीन काल इसके लिये अधिक उपयुक्त माने गये हैं। ३। इसी प्रकार भाव भी पवित्र होना चाहिए, अर्थात् प्रपञ्चमय सांसारिक भावों को हटाकर तीर्थङ्करादिक के जीवन सम्बन्धी उच्च आदर्श का विचार करते हुए समय विताना ही सामायिक व्रताराधन की संक्षिप्त रीति है।

(१) सामायिक से सावद्य व्यापारों का निरोध (रुकावट) होकर शुद्ध संवरमार्ग में आत्मा का प्रवेश होता है, इससे कर्म जन्य व्याधि नहीं बढ़ती है।। १ ॥

(२) चतुर्विंशतिस्तव—"समता भाव से युक्त होकर तल्लीन मन से परमोपकारी चतुर्विंशति तीर्थङ्करों के गुणों का चिन्तन ही चतुर्विंशतिस्तव कहा जाता है। इसे उत्कीर्तन भी कहते हैं। चतुर्विंशतिस्तव से तीर्थङ्करों के आदर्श गुणों का मनन करते हुए मलिन भावों से सञ्चित ज्ञानावरणीय कर्मों की मन्दता हो जाती है, फिर आत्मा को दर्शन अर्थात् सम्यक्त्व की विशुद्धि प्राप्त होती है जो मुक्ति मार्ग की मुख्य सीढी है। इस प्रकार फलनिर्देश शास्त्रकार ने उत्तराध्ययन के २९ वें अध्ययन में ८-९ आदि सूत्र क्रम से मूल में किया है॥ २ ॥

(३) वन्दन—"मन वचन कायाकी प्रशस्त-प्रवृत्ति ही वन्दन कहा जाता है, जिसके द्वारा अपनी आत्मा की अपूर्णता और परमात्मा व गुरु आदि पूज्य पुरुषों की पूर्णता का भान होता हो, उसे वन्दन कहते हैं, इस वन्दन में द्रव्य और भाव ये दो भेद दिखाते हुए आचार्य श्री हरिभद्रसूरिजी ने आवश्यक की वृत्ति पृ० ५१९- के वन्दनाध्ययन की व्याख्या में फरमाया है

कि—"मिथ्यादृष्टि की और उपयोग शून्य सम्यग् दृष्टि की वन्दना द्रव्य वन्दना है। उपयोगी सम्यग् दृष्टि की वन्दना भाव वन्दना है। वन्दनीय कौन हैं? इस बात पर प्रकाश डालते हुए आचार्य श्री हरिभद्रसूरिजी ने लिखा है कि जिस प्रकार एक तोला चान्दी जिस पर कि राजकीय मुद्रा छाप नहीं है अथवा एक तोला मिट्टी या पाषाण जिस पर कि किसी ने मुद्रा छाप लगादी है। तो ये दोनों ही जुदे जुदे पूरी कीमत नहीं पाते, ठीक वैसे ही वन्दनीय होने में भेष रूप मुद्रा छाप और मूल गुण रूप शुद्ध चान्दी इन दोनों को वन्दना में सम्मिलित कारण समझना चाहिए। वन्दनशील प्राणी नीच गोत्र को मिटाकर उच्च गोत्र कर्म का सञ्चय करते हैं। और अखण्ड साभाग्य के साथ आज्ञाबल व उभयलोकोपकारक चातुरी को प्राप्त करते हैं। यह त्रिकाल सत्य है मान्य–मुनिवर्ग का मत है कि वन्दनशील प्राणी का विनिपात नहीं होता है।

(४) प्रतिक्रमण—"असंयम स्थान में आई हुई आत्मा को जो पुनः संयम मार्ग की तरफ लौटाना इसे प्रतिक्रमण कहते हैं। इसके इत्वर और यावत्–कथिक रूप दो भेद हैं, इनमें इत्वर दैवसिक आदि थोड़े काल के लिये कुमार्ग प्रवृत्ति से लौटना और यावत्कथिक—महाव्रत; भक्त प्रत्याख्यान आदि का स्वीकार अर्थात् जीवन पर्यन्त कदाचार से पराङ्मुख रहना, याने यावज्जीवन सावद्य कर्मों से निवृत्त रहना, निवृत्ति स्थानों के भेदों की अपेक्षा से सूत्रकारों ने प्रतिक्रमण के भी भेद किये हैं। उच्चारादि त्यागने की क्रिया में जाने आने देखने आदि की असावधानता से हुए दोषों से आत्मा को हटाना उच्चारादि प्रतिक्रमण

है, प्रतिक्रमण के मुख्य पांच भेद हैं जैसे कि मिथ्या–विपरीत विचार में व श्रद्धा में गिरी हुई आत्मा को पीछे हटाना, सम्यग्भाव में स्थिर करना यह मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण है (१) व्रतमय जीवन से गिरी हुई आत्मा को अव्रत दशा से हटाकर व्रत दशा में लाना अव्रत-प्रतिक्रमण है (२) शान्त दशा व स्थिर दशा से निकल कर कषाय भाव (मानसिक वासना) में गिरी हुई आत्मा को वहाँ से हटाकर पुनः अकषाय भाव मे ले जाना इसे कषाय प्रतिक्रमण कहते हैं (३) अप्रमाद दशा से निकल कर प्रमाद दशा में गिरी हुई आत्मा को पुनः अप्रमाद में लौटा-लाना इसे प्रमाद प्रतिक्रमण कहते हैं (४) शुभ मन वचन काय व्यापार से अशुभ प्रवृत्ति की ओर झुकी हुई आत्मा को पुनः शुभ प्रवृत्ति में कायम करना इसे योग प्रतिक्रमण कहते हैं ।

इस प्रकार वर्णन करने वाला अध्ययन (प्रकरण) भी प्रतिक्रमण कहा जाता है, इस प्रतिक्रमण से नरक, तिर्यक्, मनुष्य, देवरूप बन्धन में पड़ी हुई आत्मा वास्तव में बन्धन मुक्त होकर सच्चे निजानन्द को पाती है । इसी बात को पूर्वाचार्यों ने इस प्रकार प्रकट की है—"कयपावोऽवि मणुस्सो आलोईअ निंदिओ गुरु सगासे । होइ अइरेग लहुओ, ओहरिअ भरुव्व भारवहो" भाव—"पाप कर चुका है ऐसा भी मनुष्य, अपने, गुरु के पास अपने पापों की आलोचना से अर्थात् प्रकट करने से और निन्दा से—पाप के लिये पश्चात्ताप करने से शिर पर से भार को जमीन पर रखने वाले भारवाही के समान कर्म के बोझ से रहित होने के सबब हलका होजाता है ॥

प्रतिक्रमण का फल दिखाते हुए सूत्रकार लिखते हैं-
"पडीक्कमणेणं वयच्छिद्दाणि पिहेइ, पिहियवयच्छिद्दे पुण-जीवे निरुद्धासवे असवल चरित्ते अट्ठसु पवयणमायासु उवउत्ते सुप्पणिहिए विहरइ" अर्थात् आत्मा प्रतिक्रमण क्रिया से व्रत के छेदों को बन्द करती है छेदो के बन्द होने से व्रतों में मलिनता नहीं आती है. इस हालत में निष्कलङ्क चारित्रयुक्त जीव आठ प्रवचन मताओं की आराधना में उपयोग के साथ समाधि (शान्ति) शील होकर विचरता है।

प्रतिक्रमण कर चुकने के बाद भी दोषों को बारंबार सेवन करते जाना द्रव्य प्रतिक्रमण है, कल्याण साधना में भावप्रतिक्रमण की आवश्यकता है। यही भाव प्रतिक्रमण परमाऽनन्द का एवं चिरस्थायी आत्म शुद्धि का कारण कहा गया है (अतएव इसकी परम आवश्यकता है,)

(५)—"कायोत्सर्ग" जिस क्रिया से किये हुए पापों को दूर करने के लिये स्थिर आसन विशेष से बैठकर शरीर के स्थूल व्यापारों का त्याग किया जाय अर्थात् जहाँ कर चरणादि के सञ्चारोंका संकोच करते हुए देहभान—कायिकममता के स्थान में आत्मभान किया जाय उस क्रिया को कायोत्सर्ग कहते हैं। इस क्रिया का वर्णन करने वाला अध्ययन भी कायोत्सर्ग ही समझा जाता है।

कायोत्सर्ग की विशेषता—"देह और आत्मा, तिल में तेल, दही में घी, फूल में सुगन्धि के समान अभेदरूप से मिले रहने के कारण देह से जुदी आत्मा का भान भी लोक भुला देते

हैं, मैं मोटा, मैं दुबला, मैं ज्ञानी, और मैं अज्ञानी, मैं काला मैं, गोरा इन सब वाक्यों में मोहान्ध बने हुए प्राणी अभिन्नरूप से अस्मत्पद—मैं शब्द से देह को ही समझ बैठते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि आत्मस्वरूप को, आत्मचिन्तन को और आत्मानन्द को भूल कर यह जीव जड़ बन जाता है, जीवनभर देहाभिमान में पड़ कर देह के ही साल सम्हाल में लगार हजाता है। इस विषय में अन्यधर्म के आचार्यों ने बहुत बड़े बड़े ग्रन्थ लिख कर समझाने का प्रयत्न किया है, किन्तु अपने वीतराग, सर्वज्ञ प्रभु ने नित्य कर्तव्य कोटि में इसे स्पष्टतया रखकर हमारे जैसे मोह मूढो पर बड़ा उपकार किया है। हमें प्रतिदिन दोबार, देवसो रायसी प्रतिक्रमण में कायोत्सर्ग करना पड़ता है, कायोत्सर्ग का सीधा सादा अर्थ होता है काया का त्याग किन्तु यह बात नहीं है, यहां पर वास्तविक अर्थ है काया के अभिमान का,—काया की अनवरत ममता का त्याग, इससे हमारी पापप्रवृत्ति रुकती है। और सच्चे चिरस्थायी चिदानन्द की ओर आत्मा झुकती है, सुख का मूलसाधन त्याग है, और त्यागों का प्रधान कारण कायिक ममता का त्याग ही है जब तक हमारी काया सम्बन्धी ममता बनी है, तब तक पापों का सर्वथा त्याग, अथवा सत्य व नित्य सुखों का अनुराग हमारे लिये कठिन ही नहीं किन्तु असाध्य है, देहाऽभिमान से ही विषयों की अभिलाषा तीव्र होती है, और विषयों की अभिलाषा ही घमाशान हिंसा की जननी है, हिंसा ही पाप का मूल और पाप ही सन्ताप कारक है। विषय सम्बन्धी सुख वास्तविक सुख नहीं है, जैसे बालक अज्ञान या अल्पज्ञान होने से तुच्छ खिलौने से

खेलते हैं और उससे असीम सुख मानते है, ठीक इसी प्रकार विषय सुख भी अज्ञान से अनुमोदित ही सुख है किन्तु वास्तविक सुख नहीं, यह बात केवल शास्त्र की ही बात नहीं किन्तु सकल साधारण के अनुभव से सिद्ध है, उदाहरण के लिये विचार कीजिए-क्षुधा, पिपासा, व काम-वासना के वशीभूत होकर जीव अन्न जल कामिनी को चाहता है और मिलने पर अपने को अतिसुखी मानता है, किन्तु वहां तथ्य क्या है ? तो केवल यही कि पहले जो क्षुधा-पिपासा की पीड़ा होरही थी, अन्न जल आदि के मिलने से वह पीड़ा जाती रही, किन्तु इससे हम सुखी होगये, यह समझना भूल है, ठीक इसी प्रकार जब तक सच्चा आत्मानन्द नहीं मिला है तब तक विषयानन्द को ही जीव (मनुष्य) आनन्द मानते हैं, जो कि निरा बालकपन है । हमारे लिये आत्मानन्द सुलभ हो, इस लिये यह कायोत्सर्ग विधि प्रचलित की गई है ।

कायोत्सर्ग की विधि—"कायोत्सर्ग खड़े होकर करना चाहिए, दोनों पैरों को अंगुली की तरफ से ४ अंगुली के अंतर से और एड़ी की तरफ ३ अंगुली के अन्तर से रखना चाहिए और दोनों हाथ नीचे की ओर शरीर से संलग्न रक्खें, ऐसे ही निश्चल होकर १९ दोषों से रहित, किये हुए आगारों के सिवा निश्चेष्ट रह कर कायोत्सर्ग सम्पन्न करना चाहिए । यदि खड़े रहकर न करसकें तो किसी भी स्थिर आसन से कर सकते हैं । कायोत्सर्ग से गत काल के व वर्तमान काल के दोषों की विशुद्धि होकर सभी दोष दूर होते हैं, दोषों के दूर होने पर शिर से बोझ उतर गया है ऐसे भारवाहों के समान आत्मा सुखी होती है,

यह सुख सौम्य सच्चा व चिरस्थायी होता है। इसको भुक्त भोगी ही जानते हैं।

पच्चक्खाण

६ पच्चक्खाण-प्रत्याख्यान—प्रत्याख्यान का पर्याय गुण धारणा है इसका अभिप्राय यह है कि कायोत्सर्ग से आत्मा की निर्मलता होजाने पर शक्ति बढ़ाने के लिये जो नमुक्कारसी आदि त्यागरूप उत्तर गुणों का स्वीकार करना, वही प्रत्याख्यान कहा जाता है। इसका वर्णन करने वाला प्रकरण भी पच्चक्खाण कहाता है। पचक्खाण से आत्मा में कर्मसञ्चय का हेतु रुक जाता है, उसके रुकने से इच्छा का निरोध होता है, इच्छा निरोध से सब वस्तुओं की लालसा, (तृष्णा) जाती रहती है फिर जीव शान्तिमय जीवन विता सकता है।

" आवश्यकों के दोष "

इन आवश्यको के दोषों में कायोत्सर्ग के १९ दोष हैं, इनको जानने पर ही कोई त्यागसकेंगे, अतएव इन दोषों का यहां वर्णन करते हैं—"घोड़े के समान एक पेर को टेढा कर खड़ा रहना, १, हवा के झोंके से हिलती लता के समान हिलना २, खम्भे या दिवाल में देह को टेक कर खड़ा रहना ३, माले आदि पर मस्तक टिकाकर खड़ा रहना ४, नंगी हुई भिल्लनी के समान गुह्य स्थान पर हाथ रख कर खड़ा रहना ५, नववहू के समान मस्तक झुका कर खड़ा रहना ६, जंजीर से बंधे पैर हो जैसे फैला कर या पैरों को परस्पर चिपका कर खड़ा रहना ७, वस्त्र को पेट से ऊपर ही रखना अथवा घुटने से भी नीचे लटकाना ८, डांस मच्छरों से

अपनी रक्षा करने को हृदय ढकना ९ गाड़ी के समान अंगूठों को अथवा पैरों को मिलाये रहना १०, संयतिओं के समान एक दम अंग ढकना ११,········के जैसा पूंजना को आगे रखना १२ काक के समान आंखों को चारो ओर बारबार फिराना १३, कपित्थ फल के समान वस्त्र समेट कर रखना १४, जैसे शरीर में भूत पिशाच लगा हो वैसे बारंबार शिर हिलाना १५, गूंगे के समान हू हू करना १६ अंगुलिओं से पाठों को गिनना १७, मदोन्मत्त के समान बड़ बड़ाना १८, बन्दर के समान होठों को हिलाना १९, ये उन्नीस कायोत्सर्ग के दोष जानकर त्यागने योग्य हैं, जिससे स्व पर का विक्षेप हो उसे दोष जानना और त्यागना चाहिए।

पच्चक्खाण—प्रत्याख्यान—

प्रत्याख्यान के मुख्य दो भेद हैं, एक मूल गुण प्रत्याख्यान व दूसरा उत्तर गुण प्रत्याख्यान. ये दोनों ही मूल गुण प्रत्याख्यान व उत्तरगुण प्रत्याख्यान देश व सर्वभेद से दो दो प्रकार के हैं, इनमें सर्व मूलगुण प्रत्याख्यान मुनिओं के पञ्चमहाव्रत हैं और देश मूलगुण प्रत्याख्यान श्रावकों के पञ्चाणुव्रत रूप हैं, सर्व उत्तर गुण साधुओं के पिण्डविशुद्धि, समिति, गुप्ति, बारह भावनायें आदि, देश उत्तरगुण श्रावकों के ४ शिक्षाव्रत, ३ गुणव्रत आदि हैं, देशोत्तर गुण प्रत्याख्यान साधु और श्रावकों के सम्मिलित अनागतादि दश प्रकार के हैं, जैसे कि—"पर्यूषणादि पर्वों में करने योग्य तप को गुरू जनादि की सेवा के कारण पर्व के पहले ही करना, इसे अनागत प्रत्याख्यान कहते हैं (१)—"पर्वादि में सेवा के कारण व्यग्रचित्त होने से या निजी अस्वस्थता के

कारण समय पर नहीं किये गये तपों को बाद में करना इसे अतिक्रान्त प्रत्याख्यान कहते हैं (२)—"चारों प्रकार के आहारों का त्यागरूप—व्रत की समाप्ति के पूर्व ही पुनः नवीन त्याग करना कोटिसहित प्रत्याख्यान कहा जाता है (३) जिस दिन जो त्याग करने का इरादा किया, रोगादि कारण होने पर भी उसी दिन उस त्याग को पूरा करना इसे नियन्त्रित प्रत्याख्यान कहते हैं, यह प्रत्याख्यान प्रथम संहनन वाले १४ पूर्व या १० पूर्व के धारक जिन कल्पी ही कर सकते हैं, (४) किसी भी आगार (छूट) से जो त्याग किया जाय उसे सागार प्रत्याख्यान कहते है (५) बिना किसी आगार (छूट) के जो त्याग किया जाय उसे अनागार प्रत्याख्यान कहते हैं (६) जिस त्याग में दातें व कवलों का परिमाण किया जाय, उसे परिमाण प्रत्याख्यान कहते हैं, (७) जहाँ चारों प्रकार के आहार व तमाखू इफीम तक का त्याग किया जाय उसे निरवशेष प्रत्याख्यान कहते हैं (८) जहाँ संकेत पूर्वक त्याग किया जाय उसे सांकेतिक प्रत्याख्यान कहते हैं, यह आठ प्रकार का है, जैसे—"अंगूठी, मूठी-गांठ, गृहगमन, पसीना होना, उच्छ्वास, जल का सूखना, प्रकाश होना, इन सबों में जब तक कोई भी किया हुआ संकेत उसी अवस्था में रहे वहाँ तक व्रत का समय पूर्ण होने पर भी पारणा नहीं करना (९) समय की मर्यादा वाला जो त्याग उसे अद्धा प्रत्याख्यान कहते हैं, यह भी नमुक्कार सी आदि भेद से दश प्रकार का है, जैसे कि— "उग्गए सूरे *नमुक्कारसहिअं पच्चक्खामि चउव्विहंपि आहारं

* इदंच मुहूर्त्तमात्रमानं रात्रि भोजन प्रत्याख्यान तीरगरूप स्यात्— (आव० अवचूरी)

असणं पाणं खाइमं साइमं अन्नत्थ णाभोगेणं सहसागारेणं वोसिरामि (१) मैं सूर्य के उदय होने से नमस्कार सहित मुहूर्त तक के लिये अशन पान खादिम स्वादिम रूप चतुर्विध आहारों को भूल चूक आकस्मिक रूप आगार के अलावा त्याग करता हूँ,॥१॥ पोरिसि अं पच्चक्खामि उग्गए सूरे चउव्विहं पि आहारं असणं ४ अन्नत्थ १ सहसा २ पच्छन्नकालेणं ३ दिसामोहेणं ४ साहुवयणेणं ५ सव्वसमाहि–वत्तियागारेणं ६ वोसिरामि (२) अर्थात्—"सूर्य के उदय होने से मैं भूल चूक, आकस्मिक, काल मोह, दिशामोह अर्थात् मेघ आदि से ढके रहने के कारण काल का दिशा का निर्णय न होने से. मुनि के वचन से, इत्यादि छूट के सिवाय सुखे †समाधे अशन पान खादिम स्वादिम रूप चतुर्विध आहार का पोरसी तक प्रत्याख्यान करता हूँ ॥ २ ॥ एवं साड्ढ पोरिसि अं पच्चक्खामि ॥ ३ ॥ नमुक्कारसी—नमस्कारसहित ऐसा नाम होने से मुहूर्त के बाद भी जब तक परमेष्ठि नमस्कार मन्त्र न बोला जाय तब तक चतुर्विध आहार त्याग सूचित होता है।

इसी प्रकार साड्ढ—डेढ पहर तक चतुर्विध आहार का त्याग करता हूँ, आगार इसके पोरसी के समान समझें ॥ २ ॥ उग्गए सूरे पुरिमड्ढं पच्चक्खामि चउव्विहं पि आहारं असणं ४ अन्नत्थणाभोगेणं १ सहसा २ पच्छन्न ३ दिसा० ४ साहु० ५

"यह प्रत्याख्यान रात्रि भोजन त्याग की समाप्ति रूप होने से एक मुहूर्त के लिये है।

† तीव्र रोगादि से घबराये हुए या समाधि निमित्त औषधादि ऐसे रूप आगारों के साथ।

महत्तरागारेणं ६ सव्वसमा० ७—"भूल १ अचानक २ कालका ज्ञान न होने से ३ दिशा का भ्रम होने से ४ साधु के वचन से ५ और दूसरी तरह से न साधा जाय ऐसे निर्जरा रूप लाभ ६ न रोग ७ इन कारणों के अलावा 'पुरिमड्ढ' दिन का पूर्वार्ध अर्थात् सूर्योदय से दोपहर तक, चारों प्रकार के आहार को त्याग करता हूँ ॥ ३ ॥ एगासणं बिआसणं पच्चक्खामि, दुविहं तिविहं पि आहारं असणं खाइमं साइमं अन्नत्थणा १ सह० २ सागारिया-गारेणं ३ आउंटण पसारणेणं ४ गुरु अब्भुट्ठाणेणं ५ (पारि-ठावणिआगारेणं) महत्तरा० ६ सव्व० ७ वोसिरामि—एगा सण—'एक वार भोजन वा एक ही पवित्र व स्थिर आसन पूर्वक दो या तीन तरह के (धारणानुसार) आहारों का त्याग करता हूँ, आगार पूर्ववत् विशेष साधु गृहस्थ के आने से कुछ काल तक आहार आदि को रोके आसन स्थिर हो तो हटकर दूसरी जगह भी भोजन कर सकते हैं, ॥ २ ॥ गृहस्थके लिये जिसके देखने से भोजन नहीं पचे, अर्थात् दृष्टि दोष आदि की आशङ्का हो तो वह सागारिक है अर्थात् इस हालत में निश्चल आसन हो तो हटकर दूसरी जगह भोजन कर सकते हैं। अथवा राजदूत के आने पर आहार व आसन बदलना पड़े तो ३ नहीं सह सकने से पैर आदि का संकोच फैलाव करते हुए आसन चले तो ४ गुरुजनों के आने पर विनय के लिये खड़ा होना सत्कार देना पड़े तो ५ इस प्रकार ७ या ८ के अलावा भोजन समाप्ति पर्यन्त हलन चलन रूप कायिक प्रवृत्ति से आत्मा को हटाता हूँ ॥ ४ ॥ एगट्ठाणं पच्चक्खामि चउव्विहंपि आहारं असणं ४ अन्न० १ सह०-२ सागारिया० ३ गुरु अ० ४ (पारिठावणि०) मह० ५ वोसि—

णाभोगेण सह० पच्छ० दिसा० साहु० मह० सव्व पाणस्स लेवे णवा अच्छेणवा वहुलेणवा ससित्थेणवा असित्थेणवा वोसिरामि। तिविहार उपवास कर पुरिमड्ढं (२ पहर तक) जलाहार का त्याग करना हो तो इस पाठ से करें अर्थ पूर्ववत् विशेष-तरल पदार्थ के लेप से या अलेप से स्वच्छ या गुदले अन्नादिकी सीतेंवाला (धोवन) या अन्नादिसीतों से रहित गर्म किया हुआ जल इन सब को २ पहर तक छोड़ता हूँ।

संवर का पच्चक्खाण--"द्रव्य से पांच आस्रव सेवन का त्याग, क्षेत्र से ढाई द्वीप तक, काल से मुहूर्त तक या इच्छानुसार भाव से १ करण २ योग से (करण योग इच्छानुसार कर सकते हैं) करूं नहीं वचन व काया से, वोसिरामि, दया का पच्चक्खाणभी इसी पाठ से करें पौषधपच्चक्खाण के पाठ में अतिचार पाठ को छोड़ कर ११ वां व्रत को बोलें।

सामायिक के बत्तीस दोष

उन में मन के दस दोष

अविवेग जसो कित्ती, लाभत्थी गव्वभय नियाणत्थी। संसय रोस अविणओ, अबहुमाण ए दोसा भणियव्वा॥ (१) विवेक विना सामायिक करे तो अविवेक दोष। (२) यश कीर्ति के लिये सामायिक करे तो यशोवांछा दोष (३) लाभ की इच्छा से करे तो लाभ वांछा दोष (४) घमण्ड के साथ किया जाय तो गर्व दोष (५) राजादि के दण्ड भय से करे तो भय दोष

टिप्पणी—पच्चखान सम्बन्धी आगारों की व्याख्याहस्त लिखित श्राद्ध प्रतिक्रमणावचूरी के आधार से ली गई है।

(६) सामायिक में नियाणा (निदान) करे तो निदान दोष (७) फल में सन्देह रख कर किया जाय तो संशय दोष (८) सामायिक में क्रोध, मान, माया, लोभ करे तो रोष दोष। (९) विनय पूर्वक सामायिक नहीं करे तथा सामायिक में देव गुरु धर्म की अविनय आशातना करे तो अविनय दोष (१०) बहुमान अर्थात् भक्ति भाव पूर्वक न करके बेगारी की तरह सामायिक करे तो अबहुमान दोष।

बचन के १० दोष

कुवयण सहसा कारे, सछन्द संखेव कलहंच। विगहा वि हासोऽसुद्धं, निरवेक्खो मुणमुणा दोसा दस।

(१) कुत्सित बचन बोले तो कुवचन दोष (२) बिना बिचारे बोले तो सहसाकार दोष (३) सामायिक में गीत, ख्याल, नाटकादि राग उत्पन्न करने वाले गाने गावे तो स्वच्छन्द दोष (४) सामायिक के पाठ और वाक्यों को कम करके बोले तो संक्षेप दोष (५) सामायिक मे क्लेशकारी वचन बोले तो कलह दोष (६) राजकथा, देशकथा, स्त्रीकथा, भोजनकथा इन चार में से कोई कथा करे तो विकथा दोष (७) सामायिक में हँसी मजाक करे तो हास्य दोष (८) सामायिक में पाठों का उच्चारण अच्छी तरह नहीं करे तो अशुद्ध दोष (९) उपयोग बिना बोले तो निरपेक्षा दोष (१०) साफ उच्चारण न करके गुंण गुंण बोले तो मुम्मण दोष। नोट—"सामायिक में अव्रती को सत्कार सम्मान देवे तो यह भी अशुद्ध दोष है ऐसा भी कोई मत है।

काय के १२ दोष

कुआसणं चलासण चलदिट्ठी, सावज्जकिरिया लंबणा कुंचण-पसारणं, आलस्स मोडण मल विमासण, निद्दा वेयावच्चत्ति बारस कायदोसा ॥ १ ॥ सामायिक में अयोग्य आसन से बैठे जैसे कि दोनों घुटने ऊंचे कर, पैर फैलाकर अथवा अभिमान सूचक आसन से बैठे तो कुआसन दोष (१) आसन बार बार बदलता रहे तो चलासन दोष (२) नेत्र चारों ओर फैंकता रहे तो चल दृष्टि दोष (३) शरीर से गृह सम्बन्धी कार्य करे तो सावद्य क्रिया दोष (४) भीत आदि का टेका लेवे तो आलंबन दोष (५) विना कारण हाथ पैर फैलावे समेटे तो अकुंचन प्रसारण दोष (६) अंग मोडे तो आलस दोष (७) अंगुलिओं को मरोड़े तो मोटक दोष (८) मैल उतारे तो मल दोष (९) शोकदर्शक आसन से बैठे तो विमासण दोष (१०) निद्रा लेवे तो निद्रा दोष (११) सामायिक में दूसरे से सेवा करावे तो वैयावृत्य दोष।

नोट—(१) शरीर विना पूजे ही खजुआवे अथवा चले फिरे तो विमासण दोष।

(२) सामायिक में स्वाध्याय करते हिले या ठण्डी से धूजे शरीर को सर्वथा ढके या उघाड़े तो कम्पन दोष।

"वन्दना के ३२ दोष"

(१) आदर रहित वन्दना करे तो अनादर दोष (२) जाति आदि के अभिमान के साथ वन्दना करे तो स्तब्ध (अभिमान दोष) (३) अधूरी वन्दना करे तो ऊन (अपूर्ण) दोष

(४) अनेकों को एक साथ वन्दना करे अथवा व्यंजनस्वर आदि को उच्चारण में गलती करते हुए वन्दना करे तो अविधि दोष, (५) टीडे की तरह उछल कर वन्दना करे तो असंयत दोष; (६) ओघा को अंकुश जैसा करके वन्दना करे तो उद्धत दोष, (७) कछुए की तरह सरकते वन्दना करे तो अस्थिर दोष, (८) एक साधु को वन्दना कर दूसरे साधु को वन्दन करने के लिये जल्दी मच्छ की तरह बायें हाथ से लौटे तो बिपरीतोप वर्तन दोष, (९) किसी एक गुण से हीन वन्दनीय को वन्दना करते हुए उनकी गुण हीनता को नजर में रखते हुए वन्दना करे तो भावान्तराय दोष, (१०) दोनों गोडों के ऊपर नीचे या बगल में अथवा गोद में दोनों हाथों को रखकर वन्दना करे, अथवा दोनों हाथों के बीच एक गोडा रखकर वन्दना करे तो विपरीताकार दोष, (११) भय से वन्दना करे तो भय दोष, (१२) ये मुझे चाहते हैं इसलिये वन्दना करे तो लोभ दोष, (१३) वन्दना करने से इनका प्रेम बना रहेगा और प्रसन्न रहेंगे इसलिये वन्दना करे तो लौकिक लाभ दोष, (१४) लोगों से अपनी प्रशंसा कराने के लिये वन्दना करे तो लालच दोष, (१५) ज्ञानादि गुणों के बिना किसी दूसरे कारण को लेकर वन्दना करे तो विपरीत कारण दोष, (१६) अपनी लघुता के भय से अपने को चोर की तरह छिपाते हुए वन्दना करे तो कायरता दोष, (१७) आहारादि के समय वन्दना करे तो अविवेक दोष, १८) स्वयं क्रोध में पड़कर या क्रोध में पड़े हुए को वन्दना करे तो रोष दोष, (१९) नाराज होकर अपने को उपदेश देते हुएको वन्दना करना स्वार्थ दोष, (२०) काठ की पुतली के

जैसे न खुश होते न नाराज ऐसे को वन्दना करने से क्या ? ऐसा समझकर वन्दना करे तो अनादर दोष, (२१) रोगादि का बहाना बताकर अच्छी तरह वन्दना न करे तो सकपट आलस्य दोष, (२२) शठता के साथ (धूर्तता से) वन्दना करे तो मायाचार दोष, (२३) आधी वन्दना करके बीच में देशादि कथा करने लगे तो विक्षेप दोष, (२४) अन्धेरे में छिपकर वन्दना करे तो विचार मूढ़ता दोष, (२५) शिर के एक हिस्से से वन्दना करे तो शृङ्ग दोष, (२६) वन्दना करने से ही छुटकारा है यह समझकर लाचारी से वन्दना करे तो मोचन दोष, (२८) वन्दना पाठ पूरा बिना पढ़े वन्दना करे तो ऊन (अपूर्ण) दोष, (२९) वन्दना कर चुकने के बाद मत्थएण वंदामि ऐसा जोर से बोलकर वन्दना करे तो चूलिका दोष, (३०) बिना बोले ही वन्दना करे तो मौन दोष, (३१) ऊंचे स्वर से वन्दना करे तो अविनय दोष (३२) ओघा फिराते हुए वन्दना करे तो—अयत्ना दोष

❀ श्री ❀

सूचना

श्रावक सूत्र वालों की उदारता—'श्रमणसूत्र' इसके पूर्ववर्ती श्रमण शब्द का अर्थ केवल साधुही नहीं है किन्तु श्रावक भी इसका अर्थ है, इसमें हमारे आराध्य मुनिवर प्रमाणरूप से भगवती सूत्र का पाठ देते हैं, किन्तु बात ऐसी नहीं है, हमारे जानते श्रमणसूत्र में बहुत कुछ विमर्श की जरुरत है। क्योंकि आज तक प्रचलित श्रावक प्रतिक्रमण मानने वाले साधुमार्गीय, मन्दिरमार्गीय तेरापन्थी इन तीनों समुदायों में सिर्फ साधुमार्गीय गिनी हुई सम्प्रदायों में ही इसका प्रचार है।

इन सम्प्रदायों मे भी श्रमणसूत्र के लिये जो आग्रह आज है, वह पहले नहीं था, मालवा, मेवाड़, दक्षिण में कुछ हिस्सा इस आम्नाय को मनाने वाला है, किन्तु मुनि श्री तिलोक ऋषिजी सम्पादित सत्यबोध में अपनी आम्नाय के प्रतिकूल श्रावक सूत्र ही दिया, और मालवा मरूधर आदि में श्रावक सूत्र वाला प्रतिक्रमण ही कई जगह पढ़ाते थे। किन्तु आज तो उस विषय में आग्रह होने लगा है, प्रसन्नता का विषय है कि श्रावक प्रतिक्रमण में श्रमणसूत्र को आवश्यक का अङ्ग न माननेवाले श्रावक सूत्रानुयायी मुनिगणों भी समाज-हित के लिये श्रावकप्रतिक्रमण के परिशिष्ट में श्रमण सूत्र को रक्खा है, अपने मत की रक्षा का लक्ष्य छोड़कर यदि समाज

तो मूल पाठ व भाषा उभय रूप से होना चाहिए, जिससे मूल का स्वाध्याय भी हो सके, प्रतिदिन के लिये नमुक्कार से लेकर कायोत्सर्ग प्रतिज्ञा के पाठ तक अवश्य करना चाहिए, ज्ञान, दर्शन, व्रतातिचार, व संलेखना के पाठ मूल या भाषा दोनों में से एक अपनी २ योग्यतानुसार पढ़ें, भाव बंदना के पाठ में नमुक्कार व पञ्च पदों के क्रम से सवैये तथा अन्त के क्षमापाठ तो अनिवार्य बोलना ही चाहिए, परिशिष्ट में श्रमण सूत्र भी दिया गया है, उसे इच्छानुसार पढ़ें, किन्तु पूर्वापर मुनियों की सम्मतियाँ जरूर पढलें।

" कृतज्ञता प्रदर्शन "

प्रतिक्रमण के संशोधन रूप इस कार्य में जिन जिन विद्वान् मुनिओ ने प्रश्नों के उत्तर आदि के सम्बन्ध में अपने बहु मूल्य समय को लगाकर जो तत्काल सम्मतियाँ दी एवं योग्य सूचनाओं से मार्ग प्रदर्शन किया जो कि भूमिका में अन्यत्र छपे हैं, उनके प्रति हम कृतज्ञता प्रकट किये विना नहीं रह सकते हैं, विशेषतया भारतरत्न पं०शतावधानीजी महाराज जैन धर्म दिवाकर उपाध्यायजी महाराज प्रवर्तक मुनि पन्नालालजी महाराज तथा लघुशतावधानीजी सौभाग्यचन्द्रजी महाराज इन महानुभावों ने जो वारंवार सम्मति प्रदानकर उत्साह-वृद्धि की अतएव ये वारंवार

धन्यवाद के पात्र हैं, लघुशतावधानीजी ने संशोधन के साथ जो श्रमण सूत्र के विषय में अपनी उदार सम्मति दी है, वह मार्ग दर्शक होने से विशेष सराहनीय है। लघुशतावधानीजी ने स्वपक्ष की परवाह न करके केवल एकता को मान दिया है। यदि इसी प्रकार उभयपक्ष के मुनिवर्य अपनी २ उदारता से शासन हित व समय को लक्ष्य में रख कर विचारकरें तो शीघ्र ही निर्णय हो सकता है। इस प्रतिक्रमण को लिखने तथा सम्मति के लिये आने जाने आदि में पं० दुःखमोचनझा व पं०-चाँदमलजी ने बहुत कुछ श्रम किया है। इसलिये समाज इन दोनों का कृतज्ञ है। साथ ही पाली शान्ति पाठशाला के अध्यक्ष सेठ सहसमलजी ने जो पं० चाँदमलजीको पाठशाला के कार्य से अव-काश देने की उदारता दिखाई है यह भी आपके शासन प्रेम का नमूना है।

इस प्रतिक्रमण के संकलन, संशोधन, सम्मति-संग्रहण-मुद्रण आदि का तमाम खर्च गुलेजगढ़ निवासी श्रीमान् शेठ श्री लाल-चंद्रजी साहब मूथा ने किया है और आपने अपनी उदारता से इस प्रतिक्रमण का स्वत्व जैन रत्न पुस्तकालय सिंहपोल जोधपुर को समर्पित किया है, अतएव यह पुस्तकालय श्रीमान् शेठ श्रीलालचन्दजी साहब को बारंबार धन्यवाद देता है और आभार मानता है।

इस कार्य में बीकानेर निवासी श्रीमान् शेठियाजी ने अपने ग्रन्थालय से आवश्यक हारिभद्रीयवृत्ति भेजकर संशोधन में सहायता दी, अतएव आपके प्रति संस्था कृतज्ञता प्रकट करती है।

सेक्रेटरी

जैन रत्न पुस्तकालय

सिंहपोल जोधपुर

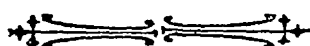
पुस्तक मिलने का पता:—

जैन रत्न पुस्तकालय सिंहपोल जोधपुर सिटी



* णमोत्थुणं समणस्स भगवओ महावीरस्स *

श्री सामायिक सूत्र



णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं,
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥
एसो पंच नमुक्कारो, सव्व पावप्पणासणो,
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवइ मंगलं ॥

शब्दार्थ

अरिहंताणं—अरिहंतो को	णमो—नमस्कार हो
सिद्धाणं—सिद्धों को	णमो—नमस्कार हो
आयरियाणं—आचार्यों को	णमो—नमस्कार हो
उवज्झायाणं—उपाध्यायों को	णमो—नमस्कार हो
लोए—लोक में (अढ़ाई द्वीप में) वर्तमान	सव्वसाहूणं—सब साधुओं को

णमो—नमस्कार हो
पंचणमुक्कारो—पांच (पदों को किया गया) नमस्कार
पाव—पापों को
च—और
मंगलाणं—मंगलों में
मंगलं—मंगल
एसो—यह
सव्व—सब
पणासणो—नाश करने वाला है
सव्वेसिं—सब
पढमं—प्रथम (पहला)
हवइ—है

गुरु वन्दन विहि (गुरु वन्दन विधि)

तिक्खुत्तो आयाहिणं, पयाहिणं करेमि, वन्दामि, नमंसामि-सक्कारेमि, सम्माणेमि, कल्लाणं, मंगलं, देवयं, चेइयं, पज्जुवासामि-मत्थएण वन्दामि ।

शब्दार्थ

तिक्खुत्तो—तीन वार
पयाहिणं—प्रदक्षिणा
वन्दामि—(गुणग्राम) स्तुति करता हूँ
सक्कारेमि—सत्कार करता हूँ
कल्लाणं—कल्याण रूप
देवयं—धर्मदेव रूप
आयाहिणं—दक्षिण तरफ से
करेमि—करता हूँ
नमंसामि—नमस्कार करता हूँ
सम्माणेमि—सम्मानदेता हूँ
मंगलं—मंगल रूप
चेइयं—ज्ञानवंत ऐसे आपकी

पज्जुवासामि—सेवा करता हूँ मत्थएण वन्दामि—मस्तक से वन्दना करता हूँ

इरियावहियं सुत्तं (मार्ग-आलोचन विधि)

इच्छाकारेणं संदिसह भगवं इरियावहियं पडिक्कमामि, इच्छं (इच्छामि) पडिक्कमिउं इरिया-वहियाए, विराहणाए, गमणागमणे, पाणक्कमणे, वीयक्कमणे, हरियक्कमणे, ओसा, उत्तिंग, पणग, दग, मट्टी, मक्कड़ासंताणासंकमणे, जे मे जीवा, विराहिया, एगिंदिया, बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिं-दिया, पंचिंदिया, अभिहया, वत्तिया. लेसिया, संघाइया, संघट्टिया, परियाविया, किलामिया, उद्दविया, ठाणाओ, ठाणं, संकामिया, जीवियाओ, ववरोविया, तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

शब्दार्थ

भगवं—हे गुरु महाराज ! इच्छाकारेणं—अपनी इच्छा पूर्वक

संदिसह—आज्ञा दीजिए (कि मैं) इरियावहियं—मार्ग से लगने वाली क्रिया का

पडिक्कमामि—प्रति क्रमण करूं इच्छं—प्रमाण है

इरियावहियाए—मार्ग में चलने से होने वाली	विराहणाए—विराधना से
पडिक्कमिउं—प्रतिक्रमण करने की	इच्छामि—इच्छा करता हूँ
गमणागमणे—जाने-आने में	पाणक्कमणे—किसी प्राणी को दबाया हो
वीयक्कमणे—किसी बीज को दबाया हो	हरियक्कमणे—वनस्पति को दबाया हो
ओसा—ओस का पानी	उतिंग—कीड़ी नगरा
पणग—पांच रंग की काई	दग—कच्चा पानी
मट्टी—सचित मिट्टी (और)	मकड़ासंताणा—मकड़ी के जालेको
संकमणे—कुचला हो	मे—मैंने
एगिंदिया—एक इन्द्रिय वाले	बेइंदिया—दो इन्द्रिय वाले
तेइन्दिया—तीन इन्द्रिय वाले	चउरिन्दिया—चारइं द्रियवाले
पंचिंदिया—पांच इंद्रिय वाले	जे—जो
जीवा—जीव हैं (उन्हे)	विराहिया—पीड़ित किया हो
अभिहया—सन्मुख आते को हना हो	वत्तिया—धूल आदिसे ढांका हो
लेसिया—मसला हो	संघाइया—इकट्ठा किया हो
संघट्टिया—छुआ हो	परियाविया—परिताप कष्ट पहुँचाया हो

किलामिया—मृत तुल्य किया हो	उद्दविया—हैरान किया हो
ठाणाओ—एक जगह से	ठाणं—दूसरी जगह
संकामिया—रक्खा हो	जीवियाओ—जीवन से
ववरोविया—छुड़ाया हो	तस्स—उसका
दुक्कडं—पाप	मि—मेरे लिये
मिच्छा—मिथ्या (निष्फल) हो।	

तस्स उत्तारी—सुत्तं (कायोत्सर्ग—प्रतिज्ञा)

तस्स-उत्तारी करणेणं, पायच्छित्त करणेणं, विसोही करणेणं, विसल्ली करणेणं, पावाणं, कम्माणं, निग्घायणट्ठाए ठामि काउसग्गं।

अन्नत्थ, ऊससिएणं, नीससिएणं, खासिएणं, छीएणं, जंभाइएणं, उड्डुएणं, वायनि-सग्गेणं, भम-लीए, पित्तमुच्छाए, सुहुमेहिं अंगसंचालेहिं, सुहु-मेहिं खेल संचालेहिं, सुहुमेहिं दिट्ठिसंचालेहिं, एव-माइएहिं आगारेहिं अभग्गो अविराहिओ हुज्ज मे काउसग्गं।

जाव अरिहंताणं भगवंताणं नमुक्कारेणं न पारेमि ताव कायं ठाणेणं मोणेणं झाणेणं अप्पाणं वोसिरामि ॥

शब्दार्थ

तस्स—उसको (आत्मा को)
उत्तरीकरणेणं—उत्कृष्ट बनाने के लिए शुद्ध करने के लिए
पायच्छित्त करणेणं—प्रायश्चित करने के लिए
विसोही करणेणं—विशेष शुद्धिकरने के लिए
विसल्लीकरणेणं—शल्य का त्याग करने के लिए
पावाणं कम्माणं—पाप रूप अशुभ कर्मों का
निग्घायणट्ठाए—नाशकरनेके लिये
काउसग्गं—कायोत्सर्ग
ठामि—करता हूँ
अन्नत्थ—नीचे लिखे हुए आगारों के सिवाय
ऊससिएणं—ऊँचा स्वांस लेनेसे
नीससिएणं—नीचा स्वांस लेनेसे
खासिएणं—खांसी आने से
छीएणं—छींक आने से
जम्भाइएणं—उबासी आने से
उड्डुएणं—डकार आने से
वायनिसग्गेणं—अधोवायुनिकलने से
भमलीए—चक्कर आने से
पित्तमुच्छाए—पित विकारकी मूर्च्छा से
सुहुमेहिं—सूक्ष्म-थोड़ा
अंगसंचालेहिं—शरीरके चलने (हिलने) से
सुहुमेहिं—थोड़ा सा
खेलसंचालेहिं—कफ संचार से
सुहुमेहिं—थोड़ी सी

दिट्ठिसंचालेहिं—दृष्टि चलने से एवमाइएहिं—इस प्रकार के दूसरे

आगारेहिं—आगारों से
काउसग्गो—कायोत्सर्ग
अविराहिओ—अखंडित
जाव—जब तक
भगवन्ताणं—भगवान् को
न पारेमि—न पारुं
कायं—काया को
मोणेणं—मौन रहकर
अप्पाणं—आत्मा को (कषाय आदि से)
मे—मेरा
अभग्गो—अभंग (भंगे नहीं) हो
हुज्ज—हो
अरिहंताणं—अरिहन्त
णमुक्कारेणं—नमस्कार करके
ताव—तब तक
ठाणेणं—स्थिर करके
झाणेणं—ध्यान धर कर
वोसिरामि—अलग करता हूँ

लोगस्स सुत्तं (चतुर्विंशतिस्तव)

लोगस्स उज्जोअगरे, धम्मतित्थयरेजिणे
अरिहंते कित्तईस्सं, चउवीसंपि केवली ॥१॥
उसभ मजिअं च वन्दे, संभवमभिणंदणं च सुमइंच
पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चन्दप्पहं वन्दे ॥२॥
सुविहिं च पुप्फदंतं, सीअल सिज्जंस वासुपुज्जं च ।
विमल मणंतं च जिणं, धम्मं संतिं च वन्दामि ॥३॥

कुंथुं अरं च मल्लिं, वन्दे मुणिसुवयं नमिजिणं च,
वंदामि रिट्ठनेमिं, पासं तह वद्धमाणं च ॥४॥
एवंमए अभिथुया, विहुयरयमला पहीणजरमरणा,
चउवीसंपि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयंतु ॥५॥
कित्तियवंदियमहिया[1], जे य लोगस्स उत्तमासिद्धा,
आरुग्गबोहिलाभं, समाहिवर मुत्तमं दिंतु ॥६॥
चन्देसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा,
सागरवर गम्भीरा, सिद्धासिद्धिं मम दिसंतु ॥७॥

शब्दार्थ

लोगस्स—लोक में
धम्मतित्थयरे—धर्मरूप तीर्थ की स्थापना करने वाले
अरिहंते—कर्मरूप शत्रुका नाश करने वाले
केवली—केवलज्ञानी तीर्थंकरों की
उसभं—श्री ऋषभदेव स्वामीको
अजियं—श्री अजितनाथजी को
उज्जोअगरे—उद्योत करनेवाले
जिणे—रागद्वेष को जीतने वाले
चउवीसंपि—चौबीसों
कित्तइस्सं—मैं स्तुति करूँगा
च—और
वन्दे—वन्दना करता हूँ

---

१ महिआ—ऐसा भी पाठ है।

संभवं—श्री संभवनाथ स्वामी

अभिणंदणं च—और श्री अभिनन्दन स्वामी को

सुमइं—श्री सुमतिनाथ प्रभु को

च—और

पउमप्पहं—श्रीपद्मप्रभु स्वामी को

सुपासं—श्री सुपार्श्वनाथ प्रभु को

जिणं च चन्दप्पहं—और जिनेश्वर चन्द्र-प्रभुस्वामी को

वन्दे—नमस्कार करता हूँ

सुविहि—श्री सुविधिनाथ को

च—और

पुप्फदंतं—श्रीपुष्पदंत भगवान को

सीअल—श्री शीतलनाथको

सिज्जंसं—श्रीश्रेयांसनाथ को

वासुपुज्जं—श्री वासुपूज्य स्वामी को

च—और

विमलं—श्री विमलनाथ को

अणंतं च जिणं—श्रीअनन्त-नाथ जिनको

धम्मं—श्री धर्मनाथ को

च संतिं—और श्री शान्तिनाथ जिनको

वंदामि—वन्दना करता हूँ

कुंथुं—श्री कुंथुनाथ को

अरं—श्री अरनाथ को

मल्लिं—श्रीमल्लिनाथ को

वन्दे—वन्दना करता हूँ

च—और—नमिजिणं—श्री नमिनाथ जिनको

रिट्ठनेमिं—श्री अरिष्टनेमि को

पासं—श्री पार्श्वनाथ को—　　तह—तथा—वद्धमाणं—श्री वर्द्धमान स्वामी को (महावीर स्वामीको)

वंदामि—मैं वन्दना करता हूँ　　एवं—इस प्रकार

मए—मेरे द्वारा—　　अभिथुआ—स्तुति किये गये

विहूयरयमला—पापरज के मल से रहित　　पहीण जरमरणा—बुढ़ापे तथा मरण से मुक्त

चउवीसंपि—चौवीसों　　जिणवरा—श्री जिनेश्वर देव

तित्थयरा—तीर्थंकर देव　　मे—मुझ पर

पसीयंतु—प्रसन्न हो　　कितिय—वचन योग से कीर्तन किये हुए

वंदिय—काय योग से वन्दन किये हुए　　महिया—मेरे द्वारा पूजन किये हुए

जे—जो—लोगस्स—लोकमे　　उत्तमा-उत्तम—(प्रधान)

ए-वे-आरुग्गबोहिलाभं—आरोग्य तथा धर्म के लाभ को

समाहिवर मुत्तमं—और उत्तम समाधि के वर को　　दिंतु—देवें

चंदेसु—चन्द्रो से भी　　निम्मलयरा—विशेप निर्मल

आइच्चेसु—सूर्यों से भी　　अहियं—अधिक

पयासयरा—प्रकाश करने वाले　　सागरवर गम्भीरा—महासमुद्र के समान गम्भीर

सिद्धा—सिद्धभगवान् मम—मुझको
सिद्धिं—सिद्धि (मोक्ष) दिसंतु—देवें

सामाइय पच्चक्खाण-पाठ, सामायिक लेने की विधि

करेमि भंते ! सामाइयं-सावज्जं-जोगं पच्चक्खामि, जाव नियमं पज्जुवासामि दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि म[1]णसा वयसा कायसा-तस्स भन्ते ! पडिक्कमामि निन्दामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ।

शब्दार्थ

भंते—हे भगवान् !
सामाइयं—सामायिक व्रत को
करेमि—मै ग्रहण करता हूँ
सावज्जं-सावद्य-(पाप सहित)
जोगं—व्यापार का
पच्चक्खामि—त्याग करता हूँ
जाव—जबतक
नियमं—इस नियम का
पज्जुवासामि—सेवन करता हूँ तब तक
दुविहं—दो प्रकार के करण से
तिविहेणं-तीन प्रकार के योग से
न करेमि—सावद्य योग को न करूँगा
न कारवेमि-न दूसरों से कराऊँगा
मणसा वयसा कायसा—मन वचन, काया से

[1]—मणेणं वाएणं काएणं—ऐसा भी पाठ है ।

तस्स—(उससे प्रथम के पाप से) भंते—हे भगवन् !

पडिक्कमामि—मैं निवृत्त होता हूँ निंदामी—उस पाप की निन्दा करता हूँ

गरिहामि—विशेष निन्दा अप्पाणं—आत्मा को, कषाय आदि से

वोसिरामि—हटाता हूँ, अलग करता हूँ

शक्रथुई (शक्र स्तुति)

नमुत्थुणं-अरिहंताणं भगवंताणं, आइगराणं, तित्थयराणं सयंसंबुद्धाणं, पुरिसुत्तमाणं-पुरिस-सीहाणं-पुरिस-वर-पुंडरियाणं, पुरिस हर-गंधवत्थीणं-लोगुत्तमाणं-लोग-नाहाणं लोग-हिआणं, लोग पईवाणं, लोगपज्जोअगराणं-अभय-दयाणं-चक्खु-दयाणं मग्गदयाणं--सरण-दयाणं-जीवदयाणं--बोहि-दयाणं-धम्म-दयाणं-धम्म- देसयाणं-धम्मनायगाणं-धम्म-सारहीणं-धम्म-वर-चाउरंत-चक्कवट्टीणं-दीवोताणं-सरण गई-पइट्ठाणं-अपडिहय-वर-नाण दंसण-धराणं विअट्ट छउमाणं-जिणाणं जावयाणं-तिन्नाणं-तारयाणं-बुद्धाणं बोहयाणं, मुत्ताणं, मोयगाणं-सव्वन्नूणं -सव्वदरिसीणं-सिव मयल मरुअ मणंत मक्खय मव्वाह-मपु-

णराविति सिद्धिगइ नामधेयं ठाणं* संपत्ताणं नमो जिणाणं-जिअ भयाणं ।

शब्दार्थ

अरिहंताणं भगवंताणं—अरिहंत भगवान् को
नमुत्थुणं—नमस्कार हो
आइगराणं—धर्म की आदि करने वाले
तित्थयराणं—धर्म तीर्थ की स्थापना करने वाले
सयं संबुद्धाणं—स्वयं बोध पाये हुए
पुरिसुत्तमाणं—पुरुषों में श्रेष्ठ (उत्तम)
पुरिससीहाणं—पुरुषों में सिंह के समान
पुरिसवर पुंडरीयाणं—पुरुषों में श्रेष्ठ कमल के समान
पुरिसवर गंध हत्थीणं—पुरुषों में प्रधान गंध हस्ती के समान
लोगुत्तमाणं—लोगों मे उत्तम
लोगनाहाणं—लोगों के नाथ
लोगहिआणं—लोगों का हित करने वाले
लोगपइवाणं—लोगो के लिए दीपक समान
लोगपज्जोअगराणं—लोगो में उद्योत करने वाले
अभयदयाणं—अभय देनेवाले
चक्खुदयाणं—ज्ञान रूपी नेत्र देने वाले

---

* दूसरे नमुत्थुण मे ठाणं संपत्ताणं के स्थान पर ठाणं सपाविउकामस्स ऐसा पाठ बोलना चाहिए।

मग्गदयाणं—धर्ममार्ग के दाता सरणदयाणं—शरण देने वाले
जीवदयाणं—संयम या ज्ञान रूपी जीवन देने वाले बोहिदयाणं—बोधि (सम्यक्त्व) देने वाले
धम्मदयाणं—धर्म्म के दाता धम्मदेसयाणं—धर्म्म के उपदेशक
धम्मनायगाणं—धर्म्म के नायक धम्मसारहीणं—धर्म्म के सारथी
धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टीणं—धर्म के प्रधान तथा चार गति का अन्त करने वाले अतएव चक्रवर्ति के समान
दीवोत्ताणं—संसार रूप समुद्र में द्वीप समान सरणगइपइट्ठा—शरणगये हुए को आधार भूत
अप्पडिहयवरनाणं दंसण धराणं अप्रतिहत—तथा श्रेष्ठ ज्ञान दर्शन के धारण करने वाले
विअट्ट छउमाणं—छद्मस्थ (घाति-कर्म) रहित जिणाणं-जावयाणं-स्वयं—राग द्वेष को जीतने वाले तथा दूसरों को जिताने वाले
तिन्नाणं तारयाणं—स्वयं संसार से तिरने वाले तथा दूसरों को तारने वाले बुद्धाणंबोहयाणं—स्वयं बोध पाये हुए तथा दूसरों को प्राप्तकराने वाले
मुत्ताणं मोयगाणं—स्वयं कर्म बन्धन से छूटे हुए तथा दूसरों को छुड़ाने वाले सव्वन्नूणं—सर्वज्ञ
सव्वदरिसीणं—सर्वदर्शी सिव—निरुपद्रव
अयलं—स्थिर अरुअं—रोग रहित
अणंतं—अन्त रहित अक्खयं—क्षय रहित

अव्वाबाहं—बाधा पीड़ा रहित	सिद्धिगइनामधेयं—सिद्ध गति नाम को
ठाणं—स्थान को	संपत्ताणं—प्राप्त हुए
जिअभयाणं—भय को जीतने वाले	जिणाणं—जिनेश्वर सिद्ध भगवान् को
नमो—नमस्कार हो	

सामाइय पारणविहि—(सामायिक पारने का पाठ)

एयस्स नवमस्स सामाइय वयस्स पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा, मणदुप्पणिहाणे, वयदुप्पणिहाणे, कायदुप्पणिहाणे, सामाइयस्स सइ अकरणया सामाइयस्स अणवट्टियस्स करणया तस्समिच्छामि दुक्कडं ॥

सामाइयं सम्मं काएणं न फासियं, न पालियं, न तीरियं, न कीट्टियं न सोहियं, न आराहिअं, आणाए, अणुपालिअं न भवइ तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

शब्दार्थ

एअस्स—ऐसे	नवमस्स—नमवे
सामाइय वयस्स—सामायिक व्रत	पंच-अइयारा—पांच अतिचार
जाणियव्वा—जानना	समायरियव्वा—आदर ना,
	न, नहीं

तंजहा(तद्यथा)-वह इस प्रकार है।
मणदुप्पणिहाणे—मन खोटे मार्ग में गया हो
वयदुप्पणिहाणे—वचन खोटे मार्ग में गये हों
काय दुप्पणिहाणे—काया खोटे मार्ग में प्रवृत्त हुई हो
सामाइयस्स-सइ-अकरणया—सामायिक लेकर अधूरी पारी हो या स्मृति न रखी हो
सामाइयस्स अणवट्ठियस्स करणआए—सामायिक अन्यवस्थित पन मे या चंचलपन से किया हो
तस्स—उस संबंधी
मि—मेरा
मिच्छा—मिथ्या निष्फल हो
दुक्कडं—पाप
सामाइयं सम्मं काएणं—सामायिक सम्यक प्रकार कायासे
न फासिअं—स्पर्श नहीं की (अच्छी तरह शरीर से)
न पालिअं—न पाली
न तीरिअं—समाप्त नहीं की
न कीट्टिअं—कीर्तन नहीं की
न सोहिअं—शुद्ध नहीं की
न आराहिअं—नहीं आराधी
आणाए—वीतराग की आज्ञानुसार
अणुपालिअं—पाली
न भवइ—न हो
तस्स—उसका
दुक्कडं—पाप
मि—मेरे लिए
मिच्छा—मिथ्या (निष्फल) हो

श्री प्रतिक्रमणसूत्र प्रारम्भः

काउसग्ग पडिन्ना (इच्छामिणं भंते का पाठ)

इच्छामिणं भंते तुब्भेहिं अब्भणुन्नाय समाणे देवसियं पडिक्कमणं ठाएमि देवसिय नाण दंसण चरित्ता चरित्त तव अइयार चिंतवणत्थं करेमि काउसग्गं॥

शब्दार्थ

इच्छामि—इच्छा करता हूँ	भंते—हे पूज्य
तुब्भेहि—आपकी	अब्भणुण्णाएसमाणे—आज्ञानुसार
देवसियं पडिक्कमणं—दिन संबंधी प्रतिक्रमण	ठाएमि—करता हूँ
देवसिय—दिवस संबंधी	नाण-दंसण—ज्ञान दर्शन (श्रद्धान)
चरित्ता-चरीत्ते—देशव्रत (श्रावक-धर्म)	तव-तप-अइयार—अतिचार (दोष) के
चितवणत्थं—चिन्तवन करने के लिए	करेमि—करता हूँ
काउसग्गं—कायोत्सर्ग को	

अइयार चिंतण पाठ- (इच्छामि ठामि का पाठ)

इच्छामि ठाइउं काउसग्गं जो मे देवसिओ अइयारो कओ काइओ वाइ ओ माणसिओ उस्सुतो उमग्गो अकप्पो अकरणिज्जो दुज्झाओ दुविचिंतिओ अणायारो अणिच्छियव्वो असावग्गपाउग्गो नाणे तह दंसणे चरित्ता चरित्ते सुए सामाइए तिन्हं गुत्तीणं चउन्हं कसायाणं पंचन्ह मणुवयाणं तिन्हं गुणवयाणं चउन्हं सिक्खावयाणं बारसविहस्स सावग धम्मस्स जंखंडियं जंविराहियं तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

शब्दार्थ

इच्छामि ठाइउं–मैं करने की इच्छा करता हूं

काउसग्गं–एक स्थान में रहने रूप कायोत्सर्ग को

जो मे–जो मैंने

देवसिओ–दिन संबंधी

अइयारो–अतिचार किया हो

काइओ–काया संबंधी

वाइओ–वचन संबंधी

माणसिओ–मन संबंधी

उस्सुतो–सूत्र विपरीत कथन किया हो

उम्मग्गो–उन्मार्ग, जैन मार्ग मे विपरीत कथन किया हो

अकप्पो–अकल्पनीय-(नहीं कल्पने योग्य).

अकरणिज्जो—नहीं करने योग्य
दुव्विचिंतिओ—दुष्ट चिन्तवन किया हो
अणिच्छिअव्वो—नहीं इच्छा करने योग्य पदार्थ की इच्छा की हो
नाणे—ज्ञान में
दंसणे—दर्शन में
सुए—सूत्र में सिद्धान्त में
तिण्हं गुत्तीणं—तीन गुप्ति की
पंचण्हमणुव्वयाणं—५ अणुव्रत की
चउण्हं सिक्खावयाणं—चार शिक्षाव्रत की
सावग धम्मस्स—श्रावक धर्म की
जं विराहियं—जो सर्वथा विराधना की हो
मिच्छा मि दुक्कडं—मेरे पाप सब निष्फल हों

दुज्झाओ—दुष्ट ध्यान किया हो
अणायारो—अनाचार किया हो
असावग्ग पाउग्गो—श्रावक वृत्तिसे विरुद्ध काम किया हो
तह—तथा-(तैसे ही)
चरित्ताचरित्ते—देशव्रत में
सामाइए—समता रूप सामायिक में
चउण्हं कसायाणं—चार कषाय की
तिण्हं गुणव्वयाणं—तीन गुणव्रत की
बारस विहस्स—इस तरह बारह प्रकार के
जं खंडियां—जो देश से खंडना की हो
तस्स—उस सम्बन्धी

नाणाइयारे—(ज्ञान-अतिचार का पाठ)

आगमे तिविहे पन्नते तंजहा-सुत्तागमे, अत्थागमे, तदुभयागमे, एअस्स सिरि नाणस्स जो मे देवसिओ अइयारो कओ तं आलोएमि—

जं वाइद्धं, वच्चामेलिअं, हीणक्खरं, अच्चक्खरं पयहीणं, विणयहीणं, जोगहीणं, घोषहीणं, सुट्ठुदिन्नं, दुट्ठुपडिच्छिअं, अकालो कओ सज्झाओ काले न कओ, सज्झाओ, असज्झाइए सज्झाअं, सज्झाइए न सज्झाअं, जो मे देवसिओ अइआरो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

(आगमे तिविहे पन्नत्ते तंजहा—सुत्तागमे—अत्थागमे, तदुभयागमे)

आगम तीन प्रकार के हैं १. सूत्र रूप (मूल रूप) अर्थरूप—और मिश्ररूप (मूल और अर्थ दोनों रूप) ऐसे श्री ज्ञान के विषय जो कोई दोष लगा हो तो आलोऊं—

सूत्र पद आगे पीछे बोला हो, एक गाथा का पद दूसरी गाथा से मिला कर बोला हो, हीन अक्षर बोला हो, अधिक अक्षर बोला हो, पद हीन बोला हो, विनय हीन बोला हो, योग हीन बोला हो, घोष हीन बोला हो,

हित ज्ञान अयोग्य को दिया हो, बुरे भाव से ग्रहण किया हो, अकाल में सज्झाय की हो, असज्झाय में सज्झाय की हो, सज्झाय में सूत्रपाठ नहीं किया हो, तो वह मेरा दुष्कृत मिथ्या हो।

दंसण सरूवं अइयारे—(दर्शन-समकित का पाठ)

अरिहंतो मम देवो, जावज्जीवाए सुसाहुणो गुरुणो।
जिण पण्णत्तं तत्तं, इअ सम्मत्तं मए गहिअं॥१॥
परमत्थ संथवो वा सुदिट्ठ परमत्थ सेवणं वावि।
वावन्न कुदंसण वज्जणा, य सम्मत्त सद्दहणा॥२॥

एअस्स सम्मत्तस्स समणोवासएणं इमे पंच अइयारा पेयाला जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा—

संका, कंखा, वितिगिच्छा, पर पासंड पसंसा, पर पासंड संथवो, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं॥

इस मेरे सम्यक्त्व (दर्शन) रत्न में जो कोई दोष लगा हो तो आलोऊं-श्री जिन वचन में शंका की हो, पर दर्शनादि की वांछा की हो, क्रिया के फल-में संदेह किया हो, या गुणियों के मलीन वेष से घृणा की हो, कुतीर्थी

किया हो, झूंठे तोले मापे किये हो, असली* दिखाकर नकली† दी हो तो तस्स मिच्छामिदुक्कडं ॥ ३ ॥

एअस्स सदार संतोसस्स समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा तंजहा—

इत्तरीय परिग्गहियागमणे, अपरियाग्गहियागमणे, अणंगकीडा पर विवाह करणे, काम भोग तिव्वाभिलासे तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ॥ ४ ॥

चौथा स्वदार संतोष परदार वेरमण व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोऊं—इत्तिरीय थोड़े काल को से गमन किया हो, अपरिगृहिता से गमन किया हो, अनंग क्रीड़ा की हो, पराये विवाह संबन्ध जोड़े हों, काम भोग की तीव्र अभिलाषा की हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ॥ ४ ॥

एअस्स पंचमस्स थूलग परिग्गह परिमाणस्स समणोवासएणंपंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा—

खेत्त वत्थुपमाणाइक्कमे, हिरण्णसुवण्णप्पमाणाइक्कमे, धण धान्यप्पमाणाइक्कमे, दुपय च

* अधिक कीमती। † मिलावट की।

उप्पयपमाणाइक्कमे, कुवियपमाणाइक्कमे, तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥ ५ ॥

पांचवां परिग्रह परिमाण रूप व्रत के विषय जो कोई अतिचार लागे हो तो आलोऊं। खेत वत्थु का परिमाण उल्लंघा हो, चांदी सोना का परिमाण उल्लंघा हो, धन धान्य का परिमाण उल्लंघा हो, दोपद चतुष्पद का परिमाण उल्लंघन किया हो, कुप्य घर सामग्री के परिमाण का उल्लंघन किया हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥ ५ ॥

एअस्स छट्ठस्स दिसिवयस्स समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा–

उड्ढदिसिपमाणाइक्कमे, अहोदिसिपमाणाइक्कमे, तिरिय दिसिपमाणाइक्कमे, खेतवुड्ढी सइ अन्तरद्धा, तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥ ६ ॥

छठा दिशिव्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोऊं। ऊंची नीची तिरछी दिशा का परिमाण अतिक्रमा हो, एक दिशा का हिस्सा घटा के दूसरी दिशा में मिलाया हो, दिशा की मर्यादा में सन्देह होने पर आगे चाले हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥ ६ ॥

सत्तमे उवभोगपरिभोगवए दुविहे पण्णत्ते

एणं पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा—

मण दुप्पणिहाणे, वयदुप्पणिहाणे, कायदुप्पणिहाणे, सामाइयस्ससइ अकरणया सामाइयस्स अणवट्ठियस्स करणया तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥९॥

नवमें सामायिक व्रत में जो कोई अतिचार लागे हो तो आलोऊं। मन वचन और काया के योग अशुभ योग वरताये हों, सामायिक की स्मृति (याद) नहीं की हो, सामायिक अपूर्ण (अधूरी) पारी हो, तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥ ९ ॥

एअस्स दशमस्स देसावगासियवयस्स समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा—

आणवणप्पओगे, पेसवणप्पओगे, सद्दाणुवाए, रूवाणुवाए, वहिया पुग्गलपक्खेवे तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥ १० ॥

दशवां देसावगासिक व्रत के विषय जो कोई अतिचार लागा हो तो आलोऊं—नियमित जगह से बाहिर की चीज मंगाई हो, भिजवाई हो, नियम बहार क्षेत्र से किसी को बुलाया हो, नियम बहार क्षेत्र से किसी को

बुलाने की इच्छा से रूप दिखा कर इशारा किया हो, कंकर आदि फैंक कर अपना आपा बतलाया हो या किसी को बुलाया हो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥ १० ॥

एअस्स एकारसमस्स पडिपुण्णपोसहोववासस्स समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा–

अप्पडिलेहिय दुप्पडिलेहियसिज्जासंथारए, अप्पमज्जिय दुप्पमज्जिय सिज्जा संथारए, अप्पडिलेहिय दुप्पडिलेहिय उच्चारपासवण भूमी अप्पमज्जिय दुप्पमज्जिय उच्चारपासवण भूमी पोसहोववासस्स सम्मं अणाणु पालणया तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥ ११ ॥

ग्यारहवां प्रतिपूर्ण पौषध व्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोऊं—सिज्जा (शया) संथारे को नहीं देखा हो, या अविधि (बुरी तरह) से देखा हो, नहीं पूजा हो या बुरी तरह पूजा हो, लघु नीति बड़ी नीति के स्थान को नहीं देखा हो या बुरी तरह देखा हो नहीं पूंजा हो या बुरी तरह पूंजा हो, पौषध व्रत की अच्छी तरह से आराधना न की हो, पौषध में निद्रा, विकथा, प्रमाद सेवा हो, जावतां—आवसही, आवसही

नहीं किया हो, आवतां निसिही निसिही नहीं किया हो, शक्रेन्द्र महाराज की आज्ञा नहीं ली हो, थोड़ी दूर पूंजा हो घणी दूर परठां हो, परठने तीन बार वोसरामि वोसरामि न किया हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥ ११ ॥

एअस्स दुवालसमस्स अतिहि संविभागवयस्स समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा—

सच्चितनिक्खेवणया, सचितपिहणया, कालाइक्कमे, परोवएसे, मच्छरिया तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

वारहवां अतिथि संविभाग व्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोऊं कल्पनीय (सूझती वस्तु) नहीं देने की बुद्धि से सचित पर रखी हो, सचित से ढांकी हो, काल का अतिक्रम (उल्लंघन) किया हो, आप देने योग्य होते हुए भी दूसरों से दिराया हो, अपनी वस्तु पराई कही हो, मच्छर वश होकर (अहंकार भाव से) दान दिया हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥ १२ ॥

संलेहणा

एवं अपच्छिम मारणांत्तिय संलेहणा झूसणा-

राहणाए पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा-

इह लोगासंसप्पओगे, परलोगासंसप्पओगे, जीवियासंसप्पओगे, मरणासंसप्पओगे, कामभोगासंसप्पओगे, तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

अपच्छिम मारणान्तिय संलेखना के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोऊं—इस लोक सम्बन्धी ऋद्धि की इच्छा की हो, परलोक में इन्द्रादि होने की वांछा की हो, कीर्ति बढाने निमित्त जीने की इच्छा की हो, पोड़ा से घबड़ा कर मरनेकी इच्छा की हो, जन्मान्तर में काम भोग के प्राप्ति की इच्छा की हो, इस तरह मारणान्तिक कष्ट आने पर भी मेरी श्रद्धा प्ररूपणा में फर्क आया हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

अठारह पाप स्थान

प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, परपरिवाद, रति—अरति, मायामृषावाद, मिथ्यात्व दर्शनशल्य, इन अठारह पाप स्थानों में से किसी का सेवन करूं नहीं, कराऊं नहीं, करते हुए को भला जाणुं नहीं, ऐसी मेरी श्रद्धा है प्ररूपणा, फर्शना करके शुद्ध होऊं वह समय मेरा परम कल्याण का हो।

सुगुरू वन्दन पाठ

इच्छामि खमासमणो ! वंदिउं जावणिज्जाए निसीहिआए, अणुजाणह मे मिउग्गहं-

निसीहि, अहोकायं कायसंफासं, खमणिज्जो भे ! किलामो-अप्प-किलंताणं बहुसुभेण भे ! दिवसो वइक्कंतो जत्ता भे ! जवणिज्जं च भे !

खामेमि खमासमणो ! देवसिअं वइक्कमं आवस्सियाए पडिक्कमामि; खमासमणाणं देवसिआए, आसायणाए, तितीसन्नयराए आसायणाए जं किंचि मिच्छाए, मणदुक्कडाए, वयदुक्कड़ाए, कायदुक्कड़ाए, कोहाए, माणाए, मायाए. लोहाए, सव्व कालिआए, सव्वमिच्छोवयाराए, सव्वधम्माइक्कमणाए आसायणाए, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स खमासमणो पडिक्कमामि निन्दामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ।

शब्दार्थ ।

खमासमणो—हे क्षमावान् ! श्रमण

निसीहिआए—शरीर को पाप क्रिया से हटाकर (मैं)

जावणिज्जाए—शक्ति अनुसार

वन्दिउं—वन्दना करना ।

इच्छामि—चाहता हूं (अतः)

मे—मुझको

मिउग्गहं—परिमित (परिमाण की हुई) भूमि में प्रवेश करने की
अणुजाणह—आज्ञा दीजिए

निसीहि—पाप क्रिया से रोक कर
अहोकायं—आपके चरण का

काय संफासं—अपनी काया-(मस्तक) से स्पर्श करता हूँ उससे
भे—आपको

किलामो—बाधा हुई हो तो
खमणिज्जो—क्षमा कीजिए।

भे—आपने
अप्पकिलंताणं—अल्पग्लान अवस्था मे रहकर

बहुसुभेणं—बहुत शुभ क्रियाओं से
दिवसो—दिवस

वइक्कंतो—बिताया
भे—आपकी

जत्ता—संयम रूप यात्रा
च—और

भे—आपका शरीर
जवणिज्जं—मन तथा इन्द्रियों की पीड़ा से रहित है ?

खमासमणो—हे क्षमावान् ! श्रमण
देवसिअं—दिवस सम्बन्धी

वइक्कमं—अपराध को
खामेमि—खमाता हूं और

आवस्सिआए—आवश्यक क्रिया करने में जो विपरीत अनुष्ठान हुआ उससे

पडिक्कमामि—निवृत्त होता हूँ
खमासमणाणं—आप क्षमाश्रमण की

देवसिआए—दिन में की हुई
तित्तीसन्नयराए—३३ में से किसी भी

आसायणाए—आशातना के द्वारा

जंकिंचि मिच्छाए—जिस किसी मिथ्या भाव से की हुई

मण दुक्कड़ाए—दुष्ट मन से की हुई

वयदुक्कड़ाए—दुर्वचन से की हुई

काय दुक्कड़ाए—शरीर की दुष्ट चेष्टा से की हुई

कोहाए—क्रोध से की हुई

माणाए—मान से की हुई

मायाए—माया से की हुई

लोहाए—लोभ से की हुई

सव्व कालिआए—सर्व काल सम्बन्धी

सव्वमिच्छोवयाराए—सर्व मिथ्याचारी आचरणों से परिपूर्ण

सव्वधम्माइक्कमणाए—सर्व प्रकार के धर्म का उल्लंघन करने वाली

आसायणाए—आशातना में से

जो मे—जो मैने

देवसिओ—दिवस सम्बन्धी

अइयारो—अतिचार

कओ—किया हो

खमासमणो—हे क्षमाश्रमण !

तस्स—उससे

पडिक्कमामि—निवृत्त होता हूँ

निंदामि—उसकी निन्दा करता हूँ

गरिहामि—विशेष निंदा करता हूँ अर्थात् गुरु के सामने निन्दा करता हूँ

अप्पाणं—आशातनाकारी आत्मा को

वोसिरामि—पापों से निवृत्त करता हूँ

तस्स सव्वस्स पाठः

तस्स सव्वस्स अइयारस्स दुब्भासिय-दुविचिंतिय दुच्चिट्ठियस्सआलोयंतो पडिक्कमामि ।

शब्दार्थः—

तस्स—उस सव्वस्स—सर्व
देवसियस्स—दिवस सम्बन्धी अइयारस्स—अतिचार की
दुब्भासिय--दुर्वचन दुच्चिंतिय—दुष्ट विचार तथा
दुच्चिट्टियस्स–काय कुचेष्टारूप की आलोयंतो—आलोचना करता हुआ
पडिक्कमामि—निवृत्त होता हूँ

चत्तारि मंगलं (चार मंगल)

चत्तारि मंगलं, अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहूमंगलं, केवलिपन्नत्तो धम्मो मंगलं ।

चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपन्नत्तो धम्मो लोगुत्तमो, चत्तारि सरणं पव्वज्जामि, अरिहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धेसरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलिपन्नत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि ।

चत्तारि—चार मंगलं—मङ्गल हैं
अरिहंता मंगलं—अरिहंत मङ्गल सिद्धा मंगलं—सिद्ध मङ्गल
हैं

साहू मंगलं—साधु मङ्गल केवलि पन्नत्तो धम्मो मंगलं—केवली प्ररूपित धर्म मङ्गल रूप है

चत्तारि लोगुत्तमा—चार वस्तु लोक में उत्तम हैं अरिहंता लोगुत्तमा—अरिहंत लोक में उत्तम हैं

सिद्धा लोगुत्तमा—सिद्ध लोक में उत्तम साहू लोगुत्तमा—साधु लोक में उत्तम

केवलि पन्नत्तो धम्मो लोगुत्तमो—केवली प्ररूपित धर्म लोक में उत्तम है

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—चार शरणों को ग्रहण करता हूँ

अरिहंते सरणं पव्वज्जामि—अरिहन्तों की शरण लेता हूँ

सिद्धे सरणं पव्वज्जामि—सिद्ध प्रभु की शरण लेता हूँ

साहू सरणं पव्वज्जामि—साधु जी की शरण लेता हूँ

केवलि पन्नत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि—केवलि प्ररूपित धर्म की शरण लेता हूँ।

नोट—चार शरणा दुर्गति हरणा, और शरणा नहीं कोय।
जो भवि प्राणी आदरे, तो अक्षय अमर पद होय॥

अणुव्रत

पढमं अणुव्वयं थूलपाणाइवायाओ वेरमणं तसजीवे बेइंदिय तेइंदिय चउरिंदिय, पंचिंदिये संकप्पओ हणण—हणावण—पच्चक्खाणं ससरीर

सविसेस पीडाकारिणो स–सम्बन्धि सविसेस पीडा कारिणो वा वज्जिऊण जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा।

एअस्स पढमस्स थूलगपाणाइवाय–वेरमणवयस्स समणोवासएणं—

पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा–बंधे, वहे, छविच्छेए, अइभारे, भत्तपाण-वुच्छेए जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥ १ ॥

पहला अणुव्रत थूल हिंसा वेरमण त्रस जीव वेन्द्रिय, तेन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, जान के पहिचान के स्व सम्बन्धी शरीर में पीड़ाकारी सापराधी को छोड़ निरपराधी को मारने की बुद्धि से हिंसा करने करवाने के त्याग जाव जीव तक दोकरण तीन योग से करुं नहीं कराऊं नहीं मन-बचन और काया से इस तरह पहला स्थूल प्राणातिपात वेरमण व्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोऊं–रोषवश गाढ़े बंधन-बांधे हो, गाढ़े मार मारा हो, अंगो-पांग आदि का छेद किया हो, अधिक भार भरा हो, अहार पानी का विच्छेद किया हो तो जोमेदेवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥ १ ॥

अदत्त लेने के त्याग जाव जीव तक दो करण तीन योगसे इस तरह तीसरे अदत्तादान विरमणव्रतके विषय जो कोई अतिचार लगो हो तो आलोऊं चोरकी वस्तु ली हो, चोर को सहायता की हो, राज्य विरुद्ध कार्य किया हो, झूंठे तोले मापे किये हों असली दिखाकर नकली दी हो तो जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥३॥

मूल—चउत्थं अणुव्वयं मेहुणवेरमणं सदार संतोसिय अवसेसं मेहुणविहि—पच्चक्खाणं जावज्जीवाए दिव्वं दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा माणुस्सं तिरिक्ख जोणियं एगविहं एगविहेणं न करेमि कायसा ।

एअस्स सदार संतोसस्स समणोवासएणं पंच अइयारा-जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा-

इत्तरिय—परिग्गहियागमणे, अपरिग्गहिया गमणे, अणंग—कीड़ा, पर—विवाह करणे, काम भोग तिव्वाभिलासे जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥ ४ ॥

अर्थ—चौथा अणुव्रत स्वदार संतोष परदार विवर्जन रूप, देवदेवी सम्बन्धी दो करणतीन योग से करुं नहीं कराऊँ नहीं मन वचन काया से मनुष्य तिर्यञ्च संबन्धी, एक करण एक योग से न करुं कायसा, जावजीव तक इस

तरह चौथा स्वदार संतोष परदार वेरमण रूप व्रत के विषय जो कोई अतिचार लागे हो तो आलोऊँ—

इत्तरिया से गमन किया हो, अपरिगृहीता से गमन किया हो, अनंग क्रीड़ा की हो, दूसरों के विवाह संबन्ध जोड़े हों, काम भोग की तीव्र अभिलाषा की हो तो जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥ ४ ॥

मूल–पञ्चमं अणुव्वयं थूल परिग्गहवेरमणं खेत्त वत्थूणं जहा परिमाणं, हिरण्णसुवण्णाणं जहा परिमाणं, धणधन्नाणं जहा परिमाणं, दुप्पय चउप्पयाणं जहापरिमाणं, कुप्पस्स जहा परिमाणं, एवं मए जहापरिमाणं कयं तओ अइरित्तस्स, परिग्गहस्स पच्चक्खाणं, जावज्जीवाए, एगविहं, तिविहेणं न करेमि मणसा वयसा कायसा, एअस्स पंचमस्स थूलग—परिग्गहपरिमाणवयस्स समणोवासएणं-पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा—

खेत्तवत्थुप्पमणाइक्कमे, हिरण्णसुवण्णपमाणाइक्कमे, धणधन्नपमाणाइक्कमे, दुपयचउप्पयपमाणाइक्कमे, कुवियपमाणाइक्कमे, जो मे देवसिओअइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥ ५ ॥

अर्थ–पाँचवाँ अणुव्रत इच्छापरिमाण–परिग्रह वेरमण, क्षेत्र वस्तु का यथा परिमाण, सोने चांदी का यथा परिमाण, धनधान्य का यथा परिमाण, दो पद चतुष्पद का यथा परिमाण, कुप्य घर सामग्री का यथा परिमाण, किया है इसके उपरांत अपना करके परिग्रह रखने के पच्चक्खाण जावजीव तक एक करण तीन योगसे करूं नहीं मन वचन काया से इस तरह पाँचवे परिग्रह परिमाण रूप अणुव्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोऊं खेत्तवत्थुका परिमाण उल्लंघा हो, सोना चाँदी का परिमाण उल्लंघा हो, धनधान्य का परिमाण उल्लंघा हो, दोपद चतुष्पद का परिमाण उल्लंघा हो कुप्य घर सामग्री के परिमाण उल्लंघे हों तो जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥ ५ ॥

मूल–छट्ठं दिसिवयं उड्ढदिसाए जहा परिमाणं, अहो दिसाए जहापरिमाणं, तिरिय दिसाए जहा परिमाणं, एवं जहा परिमाणं कअं तओ सेच्छाए कायाए गन्तूणं पंचासवासेवणपच्चक्खाणं–जावज्जीवाए दुविहं, तिविहेणं न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा एअस्स छट्ठमस्सदिसिव्वयस्स समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा—उड्ढदिसिप्पमाणाइक्कमे, अहो-

दिसिप्पमाणाइक्कमे, तिरियदिसिप्पमाणाइक्कमे, खेत्त-वुड्ढी-सइअंतरद्धा, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥ ६ ॥

अर्थ—छठा दिशिव्रत—ऊँची दिशा का यथा परिमाण, नीची दिशा का यथा परिमाण, तिरछी दिशा का यथा परिमाण, किया है उसके उपरांत अपनी इच्छानुसार काया से जाकर पाँच आश्रव सेवन करने के त्याग जाव-जीव तक दो करण तीन योग से करुं नहीं कराऊं नहीं मन वचन और काया से इस तरह छठे दिशिव्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोऊँ—ऊँची दिशा का परिमाण उल्लंघा हो, नीची दिशा का परिमाण उल्लंघा हो, तिरछी दिशा का परिमाण उल्लंघा हो, एक दिशा का हिस्सा घटा के दूसरी दिशा में मिलाया हो, दिशा की मर्यादा में संदेह होने पर आगे चाले हो तो जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥ ६ ॥

सत्तमे वए उवभोग परिभोगविहिं पच्चक्खाय-माणे, उल्लणियाविहि, दन्तणविहि, फलविहि, अब्भंगणविहि, उवट्टणविहि, मज्जणविहि, वत्थ-विहि, विलेवणविहि, पुप्फविहि, आभरणविहि, धूवणविहि, पेज्जविहि, भक्खणविहि, ओदणविहि, सूपविहि, विगयविहि, सागविहि, माहुरयविहि,

जेमणविहि, पाणियविहि, मुहवासविहि, वाहणविहि, वाणहविहि, सयणविहि, सचित्तविहि, दव्वविहि।

इच्चाईणं जहापरिमाणं कयं तओ अइरित्तस्स उवभोग परिभोगस्स-पच्चक्खाणं, जावज्जीवाए, एगविहं तिविहेणं न करेमि मणसा वयसा कायसा सत्तमे उवभोग परिभोग वए दुविहे पन्नते तंजहा-भोयणओ, कम्मओय, तत्थणं भोयणओ समणोवासएणं पंचअइयारा जाणियव्वा न समायरिव्वा तंजहा—

सचित्ताहारे, सचित्तपडिबद्धाहारे, अप्पउलिओसहि भक्खणया, दुप्पउलिओसहि भक्खणया, तुच्छोसहि भक्खणया—

कम्मओणं समणोवासएणं पन्नरस कम्मादाणाइं जाणियव्वाइं न समायरियव्वाइं तंजहा—इंगाल कम्मे, वणकम्मे, साड़ीकम्मे, भाड़ीकम्मे, फोड़ीकम्मे, दन्तवाणिज्जे, लक्खवाणिज्जे, रसवाणिज्जे, केसवाणिज्जे, विसवाणिज्जे, जंतपीलणकम्मे, निल्लंछणकम्मे, दवग्गिदावणयाकम्मे, सरदहतलाग सोसणयाकम्मे, असइजणपोसणयाकम्मे, जोमेदेवसिओ अइयारोकओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥ ७ ॥

सातवां व्रत उवभोग परिभोग परिमाण व्रत—अंग पूंछन के वस्त्र, दंतवन की विधि, फल, मर्दन के तेल, पीठी, स्नान, वस्त्र, विलेपन, फूल, आभरण, धूप, पेय, पका अन्न, ओदन, सूप (दाल) विगय, शाक, माधुर (मीठेफल) जीमन विधि, पानी, सुवासित, (मुखवासविधि) वाहन (सवारी) उवाणह, (पांवरक्षा के साधन) शयन (शय्याविधि) सचित्त वस्तु, द्रव्यविधि, इत्यादि का जैसा परिमाण किया है, उसके उपरांत उपभोग परिभोग की वस्तुएँ भोगने के पच्चक्खान जावजीव तक एक करण तीन योग से, करूं नहीं मन वचन काया से, एवं सातवां व्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोऊँ-सचित्त का आहार किया हो, सचित्त से लगी हुई का आहार किया हो, अपक्क (कच्ची) औषधि का आहार किया हो, दुपक्क का आहार किया हो, तुच्छ फलों का आहार किया हो तो जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥ ७ ॥

अट्ठमं वयं अणट्ठादण्ड वेरमणं, चउविहे अणट्ठ-दण्डे पन्नत्ते तं जहा-अवज्झाणाचरिए, पमायाचरिए, हिंसप्पयाणे, पावकम्मोवएसे एवं अट्ठमस्स अणत्थ दंडासेवणस्स पच्चक्खाणं जावज्जीवाए दुविहं तिवि हेणं न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा।

एअस्स अट्ठमस्स अणट्ठदंडवेरमणवयस्स समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा-कन्दप्पे, कुक्कुइए मोहरिए संजुत्ताहिगरणे, उवभोगपरिभोगाइरि (त्तकरणे) त्ते जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥ ८ ॥

आठवां अनर्थादण्ड वेरमणव्रत, चार प्रकार का अनर्थादण्ड जैसे बुरा ध्यान रूप, प्रमादरूप, हिंस्र प्रदान (हिंसाकारी-शस्त्र आदि देने रूप, पाप कर्म का उपदेश देने रूप अनर्था दंड सेवन के त्याग जाव जीव तक दो करण तीन योग से करुं नहीं कराऊं नहीं मन वचन काया से एवं आठवां अनर्थादंड वेरमण व्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोऊं विषय बढ़ाने वाली कथाएँ की हों, भंड की तरह कुचेष्टा की हो विना मतलव अधिक बोला हो, अधिकरण जोड़ रखे हो, उपभोग परिभोग की चीजें परिमाण से अधिक रखी हो तो जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥ ८ ॥

नवमं सामाइयवयं सावज्ज जोग वेरमणरूवं जाव नियमं पज्जुवासामि दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा एवं भूआमे

सद्दहणा परूवणा, सामाइयावसरे समागए सामाइय करणे फासणाओसुद्ध ।

एअस्स नवमस्स सामाइयवयस्स समणोवासएणं पंच अइयारा-जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा मणदुप्पणिहाणे, वयदुप्पणिहाणे, काय दुप्पणिहाणे, सामाइयस्स सइ अकरणया, सामाइयस्स अणवट्ठियस्स करणया जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥ ९ ॥

नवमां सामायिक व्रत सावज्जजोग वेरमणरूप नियमित समय तक सेवन करूं दो करण तीन योग से जाव जीव तक मन वचन काया से ऐसी मेरी श्रद्धा है प्ररूपणा है सामायिक के अवसर पर सामायिक करके शुद्ध होऊं ।

एवं नवमे सामायिक व्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोऊं-मन वचन और काया के योग अशुभ वरतायें हों, सामायिक-की स्मृति (सम्भाल) न की हो, सामायिक अधूरी पारी हो तो जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥ ९ ॥

दसमं देसावगासियवयं दिणमज्झे पच्चूसकालाओ आरब्भपुव्वादिसु छसु दिसासु जाव इयं परिमाणं कयं तओ अइरित्तं सेच्छाए सकाएणं

गन्तूणं अन्ने वा पहिऊण पञ्चासवासेवणस्स पच्चक्खाणं जावअहोरत्तं दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा ।

अह य छसु दिसासु जाव इयं परिमाणं कअं तम्मज्झे वि जाव इयाइं दव्वाइ पमाणं कअं तओ अइरित्तस्स भोगोवभोगस्स पच्चक्खाणं जाव-अहोरत्तं एगविहं तिविहेणं न करेमि मणसा वयसा कायसा ।

एअस्स दसमस्स देसावगासियवयस्स समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा आणवणप्पओगे पेसवण-प्पओगे सद्दाणुवाए, रूवाणुवाए, वहियापुग्गलपक्खेवे जोमे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥१०॥

दशवां देसावगासिक व्रत, दिन प्रति प्रभात से लेकर पूर्व आदि छ दिशाओं की जितनी भूमि खुली रखी है उसके उपरांत अपनी इच्छानुसार काया से जाकर पांच आश्रव सेवन करने के पच्चक्खान अहोरात्र तक आराधन करुं दोकरण तीन योग से, करुं नहीं, कराऊं नहीं मन वचन काया से, इस तरह खुली रखी हुई भूमि में द्रव्यादिक की जितनी मर्यादा की है उसके उपरान्त उपभोग परिभोग की चीजें भोगने के पच्चक्खाण अहोरात्रि तक

एक करण तीन योग से करूं नहीं मन वचन काया से एवं देसावगासिक ब्रतके विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोऊं नियमित सीमा से बाहिर को चीज़ मंगाई हो, भिजवाई हो, नियम बाहर के क्षेत्र से किसी को बुलाया हो, या बुलाने की इच्छा से रूप दिखा कर इशारा किया हो, कंकर आदि फैंक कर अपना आपा बतलाया हो या किसी को बुलाया हो तो तस्स मिच्छामि-दुक्कडं ॥ १० ॥

एकारसमे पडिपुण्णे पोसहोववासे वए सव्वओ असण-पाण-खाइम-साइम-पच्चक्खाणं अबंभपच्च-क्खाणं, मणि सुवण्णाइ पच्चक्खाणं, मालावण्णग विलेवणाइ पच्चक्खाणं, सत्थमूसल वावाराइसाव-ज्जजोग पच्चक्खाणं, जाव अहोरत्तं पज्जुवासामि दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा-कायसा एवं मे सद्दहणा परूवणा पोसहाव-सरे समागए पोसहकरणे फासणाओ सुद्धा हविज्ज।

एअस्स एकारसमस्स पडिपुण्णपोसहोववा-सस्स समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा—

अप्पडिलेहिय दुप्पडिलेहिय सिज्जासंथारए अप्पमज्जिय दुप्पमज्जिय सिज्जा संथारए अप्प-

डिलेहिय दुप्पडिलेहिय उच्चारपास वण भूमीओ अप्प-
मज्जिय दुप्पमज्जिय उच्चारपासवण भूमीओ, पोस-
होववासस्स सम्मं अणणुपालणया जो मे देव-
सिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥११॥

ग्यारहवां पडिपुण्ण पौषधव्रत-असन-पान, खादिम, सादिम, के पच्चक्खान मैथुन सेवन का पच्चक्खान, आभूषण का पच्चक्खान, माला विलेपन का पच्चक्खान, शस्त्र-मूसलादि सावद्य व्यापार का पच्चक्खान अहोरात्र तक आराधन करुं दोकरण तीन योग से करुं नहीं कराऊं नहीं मन वचन काया से ऐसी मेरी श्रद्धा प्ररूपणा है पौषध का अवसर पाकर पौषध की आराधना करके शुद्ध होऊं एवं ग्यारहवां पौषध व्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोऊं शय्या संथारे को नहीं देखा हो, या बुरी तरह देखा हो, नहीं पूंजा हो या बुरी तरह पूंजा हो. लघुनीति बड़ीनीति के स्थान को नहीं देखा हो या बुरी तरह देखा हो, नहीं पूंजा हो या बुरी तरह पूंजा हो, पौषध की विधि पूर्वक आराधना न की हो पौषध में निद्रा विकथा प्रमाद सेवा हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥११॥

बारसमे अतिहि संविभाग वए समणे निग्गंथे फासुएणं एसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं

वत्थ पडिग्गह कंबल पाय पुंछणेणं पाडिहारिएणं पीढ फलग-सिज्जा-संथारएणं, ओसह भेसज्जेण य पडिलाभेमाणे विहरामि।

एवं मे सद्दहणा परूवणा-साहु-साहुणीणं, जोगे पत्ते फासणाए सुद्धा हविज्ज। एअस्स दुवालसमस्स अतिहि-संविभागवयस्स-समणोवासएणं पंच अइ-यारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा।

सचित्त निक्खेवणया, सचित्तपिहणया, कालाइक्कमे, परववएसे[1], मच्छरिया जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥ १२ ॥

बारहवां अतिथि संविभागव्रत, श्रमण निर्ग्रन्थ को निर्दोष असन-पान खादिम सादिम वस्त्र पात्र कम्बल पाद पुंछन पीढ़ फलग सेज्जा-संथारा, औषध भैषज से प्रति लाभता हुआ विचरुं, ऐसी मेरी श्रद्धा प्ररूपणा है साधु साध्वी का योग मिलने पर विधि-पूर्वक दान की आरा-धना करके शुद्ध होऊं-एवं बारहवें अतिथि संविभाग व्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोऊं-कल्प-नीय (सूझती) वस्तु नहीं देने की बुद्धि से सचित्त पर रखी हो, सचित्त से ढ़ाँकी हो, काल का अतिक्रम किया

---

१ (परोवएसे)

हो, भोजन समय टाल कर निमंत्रण किया हो, आप देने योग्य होते हुए भी दूसरे से दिलाया हो, या अपनी वस्तु पराई कही हो, मच्छर (इर्षा) भाव से दान दिया हो तो जोमें देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥१२॥

अपच्छिम मारणान्तिय संलेहणा-पडिवज्जण-विहि-

अपच्छिम मारणन्तिय संलेहणा समए पोसहसालं पडिलेहित्ता पोसहसालं पमज्जित्ता उच्चार-पासवण भूमिं पडिलेहित्ता गमणागमणं पडिक्कमित्ता दब्भसंथारं संथरित्ता दुरूहित्ताय उत्तरपुरत्थिमदिसा-भिमुहे संपलियंकाइ आसणेनिसीइत्ता करयल परिग्गहियं[1] दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिंकट्टु एवं वएज्जा नमुत्थुणं अरिहंताणं, भगवन्ताणं, जाव, संपत्ताणं, नमुत्थुणं, मम धम्माय-रियस्स जाव सम्पाविउकामस्स वन्दामि णं भग-वन्तं तत्थगयं इहगए पासउ मे भगवं तत्थगए इहगयं त्ति कट्टु वन्दित्ता नमंसित्ता एवं वइज्जा पुव्विं मए जाणि वयाणि चिन्नाणि ताणि आलोइत्ता पडिक्कमित्ता निंदित्ता निसल्ली होऊण सव्वं पाणा-इवायं पच्चक्खामि सव्वं मोसावायं सव्वं-अदिन्ना-

१ (वयासी)

दाणं, सव्वं मेहुणं सव्वं परिग्गहं सव्वं कोहं जाव सव्वं मिच्छादंसण सल्लं अकरणिज्जं जोगं पच्च-क्खामि, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणेमि मणसा वयसा, कायसा, सव्वं, असणं, पाणं, खाइमं, साइमं चउव्विहंपि आहारं पच्चक्खामि, जाव-ज्जीवाए, जं पि य इमं सरीरं इट्ठं कंतं पियं मणुण्णं मणामं, धिज्जं, विसासियं, संमयं, अणुमयं, बहुमयं भण्डकरण्डय समाणं रयणकरण्ड भूयं, मा णं सीअं, माणं उण्हं, माणं खुहा माणं पिवासा, माणं वाला, माणं चोरा, माणं दंसा, माणं मसगा, माणं वाहिय पित्तिय, संभिय, सन्निवाइय, विविहा रोगा-यंका-परिसहोवसग्गा फुसंतु त्ति कट्टु एवं पिणं चरिमेहिं उस्सासनिस्सासेहिं वोसिरामि त्तिकट्टु संलेहणा झूसणाए देहं झोसित्ता कालं अणवकंख माणे विहरामि एवं मए सद्दहणा परूवणा अण-सणा वसरे पत्ते अणसणे कए फासणाए सुद्धा हविज्जा एवं अपच्छिम मारणन्तिय संलेहणा झूसणा आराहणाए पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा-इहलोगासंसप्पओगे, पर-लोगासंसप्पओगे, जीविया संसप्पओगे मरणासं-

संपओगे कामभोगासंसप्पओगे तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

तस्स धम्मस्स ।

तस्स धम्मस्स केवलिपन्नत्तस्स अब्भुट्ठिओमि आराहणाए विरओमि विराहणाए, सव्वं तिविहेणं पडिक्कन्तो वंदामि जिण-चउवीसं ॥

शब्दार्थ

केवलिपन्नत्तस्स—केवली भाषित
तस्स—उस
धम्मस्स—धर्म की
आराहणाए—आराधना के लिए
अब्भुट्ठिओमि—उद्यत होता हूँ
तिविहेणं—मन वचन काया द्वारा
विराहणाए—विराधना से
पडिक्कन्तो—निवृत्त होता हुआ
विरओमि—विरक्त होता हुआ
जिण चउवीसं—२४ तीर्थंकरों को
वन्दामि—वन्दना करता हूँ

भाव वंदना

१ नमुं श्री अरिहंत, कर्मों का किया अन्त हुआ सो केवलवन्त, करुणा भण्डारी है। अतिशय चौंतीस धार, पैंतीस वाणी उच्चार, समभावे नरनार पर उपकारी है। शरीर सुन्दराकार सूरज सो भलकार, गुण है अनन्तसार

दोष परिहारी हैं। कहत है तिलोक रिख मन वच काया करी लुली २ बारम्बार वन्दना हमारी है ॥ १ ॥

नमो अरिहंताणं—पहिले पद श्री अरिहंत महाराज चौतीस अतिशय ३५ वाणी के गुणकर विराजमान महाविदेह क्षेत्र में जयवन्त विचरे श्री सीमन्धर स्वामी (श्री युगमन्धर स्वामी श्री बाहु स्वामी श्री सुबाहु स्वामी श्री सुजात स्वामी श्री स्वयंप्रभव स्वामी श्री ऋषभानन्दन स्वामी श्री अनन्तवीर्यस्वामी श्री सूरप्रभुस्वामी श्री वज्रधर स्वामी श्री विशालधरस्वामी श्री चन्द्रानन स्वामी श्री चन्द्रबाहु स्वामी श्री भुजंगधरस्वामी श्री ईश्वरस्वामी श्री नेमप्रभुस्वामी श्री वीरसेन स्वामी श्री महाभद्रस्वामी श्री देवयश स्वामी श्री अजितवीर्य स्वामी) आदि जघन्य २० उत्कृष्ट १६० तथा १७० तीर्थंकर अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त चारित्र, अनन्त बल, देव दुन्दुभी, भामण्डल, फटिक सिंहासन, अशोक वृक्ष, पुष्प वृष्टि, दिव्य ध्वनि, छत्र धरे चामर वींजे, इन १२ गुणोंसे विराजमान, चौंसठ इन्द्रों के पूजनीय जघन्य दो क्रोड़ उत्कृष्टा ६ क्रोड़ केवली, केवल ज्ञान, केवल दर्शन कर सहित १८ दोषों से रहित सर्व द्रव्य क्षेत्र काल भाव के जानकर इत्यादि अनेक गुणों कर विराजमान जिन महाराजों को मेरी भाव वन्दना नमस्कार हो जो ॥ १ ॥

ऐसे अरिहंत भगवन्त महाराज आपकी दिवस सम्बन्धी अविनय आशातना हुई हो तो १००८ बार तिक्खुत्ते के पाठ से नमस्कार करता हूँ। आप मांगलिक हो, उत्तम हो, आपका इस भव में पर भव में शरणा हो जो। १.

सिद्ध वंदना।

सकल कर्म टाल वश कर लियो काल,
मुक्तिमें रह्या म्हाल आत्मा को तारी है।
देखत सकल भाव हुआ है जगत राव,
सदा ही खायिक भाव, भये अविकारी है॥
अचल अटल रूप आवे नहीं भव कूप,
अनुप-सरूप-ऊप, ऐसे सिद्ध धारी है।
कहत है तिलोकरिख, बताओ ए वास प्रभु,
सदा ही उगंत सूर; वन्दना हमारी है॥२॥

नमो सिद्धाणं दूसरे पद श्री सिद्ध भगवन्त महाराज १४ प्रकारे १५ भेदे सिद्ध (सकल कर्म रहित) हुए हैं ८ गुणाकर विराजमान १ अनन्त ज्ञान, २ अनन्त दर्शन ३ अनन्त सुख. ४ क्षायिक समकित ५ अटल अवगाहना ६ अमूर्तपना ७ अगुरुलघु ८ अनन्त बल, ३१ अतिशय से विराजमान; ५ भेदे ज्ञाना वरणीय कर्म क्षय किये, ९ भेदे दर्शनावरणीय कर्म क्षय किये, २ भेदे वेदनीय कर्म

क्षय किये २ मोहनीय कर्म क्षय किये, ४ आयुकर्म क्षय किये, २ नाम कर्म क्षय किये, २ भेदे गोत्र कर्म क्षय किये और ५ भेदे अन्तरायकर्म क्षय किये, जहां जन्म नहीं, जरा नहीं, मरण नहीं, भय नहीं, रोग नहीं, शोक नहीं, दुःख नहीं, दारिद्र नहीं, कर्म नहीं, काया नहीं, मोह नहीं, लघु नहीं, गुरु नहीं, यावत् निरंजन निराकार ज्योति-स्वरूप ज्योति में विराजमान अनन्त सुख में लवलीन, जिन महापुरुषों को मेरी भाव वन्दना नमस्कार हो जो ॥ २ ॥

ऐसे श्री सिद्ध भगवन्त महाराज आपकी अविनय आशातना हुई हो तो हाथ जोड़ १००८ वार तिक्खुत्ते के पाठ से वन्दना नमस्कार करता हूँ। हे सिद्ध भगवन्त ! महाराज ! आप मांगलिक हो, उत्तम हो, आपका इस भव में पर भव में शरणा हो जो ॥ २ ॥

आचार्य—वन्दना

गुण हैं छत्तीसपूर धरत धरम उर,
मारत कर्म क्रूर सुमति विचारी है।
शुद्ध सो आचारवन्त सुन्दर है रूप कन्त,
भणिया सब ही सिद्धान्त वांचणी सुप्यारी है।

अधिक मधुर वेण कोई नहीं लोपे केण,
सकल जीवों का सेण कीरत अपारी है ।
कहत है तिलोक रिख हितकारी देत सीख,
ऐसे आचारज ताकूं वन्दना हमारी है ॥३॥

नमो आयरियाणं—तीजे पद श्री आचार्य महाराज, ३६ गुणांकर विराजमान, ५ आचार पाले, ५ महाव्रत पाले, ५ इन्द्रिय जीते, ४ कषाय टाले, ९ बाड़ शुद्ध शील पाले, ५ समिति से समित, ३ गुप्ति से गुप्त, ८ संपदा सहित, निश्चल समकिती निकट भव्य, शुक्ल पक्षी, मोक्ष-मार्ग के सारथी इत्यादि अनेक गुणों से विराजमान जिन महापुरुषों को मेरी भाव वन्दना नमस्कार हो जो ॥३॥

ऐसे श्री आचार्य महाराज आपकी अविनय आशातना हुई हो तो हाथ जोड़ १००८ बार तिक्खुत्तो के पाठ से वन्दना नमस्कार करता हूँ । हे आचार्य महाराज ! आप मांगलिक हो, उत्तम हो, आपका इस भव में पर भव में बारम्बार शरण हो जो ॥ ३ ॥

उपाध्याय वन्दना

पढ़त इग्यारह अंग, कर्मोंसेकरे जंग,
पाखंडी को मान भंग,—करण हुसियारी है ।

चउदेपूरव धार जानत आगमसार,
भविन के सुखकार भ्रमता निवारी है।
पढ़ावे भविकजन स्थिर करि देत मन,
तपकर तावे तन ममता निवारी है।
कहत है तिलोकरिख ज्ञान भानु परतिख,
ऐसे उपाध्यायजी को वन्दना हमारी है ॥४॥

नमो उवज्झायाणं—चौथे पद श्री उपाध्यायजी महाराज आप पढ़े औरों को पढ़ावे, २५ गुणोंकर विराजमान, ११ अंग १२ उपांग के पाठक, (११ अंग के नाम १ आचाराङ्ग २ सूयगडाँग, ३ ठाणायंग, ४ समवायांग ५ भगवती, ६ ज्ञाता ७ उपासक-दशांग, अन्तगडदशांग ९ अनुत्तरोव वाई १० प्रश्न व्याकरण ११ विपाक सूत्र। १२ उपांग-उववाई, रायपसेणी, जीवाभिगम, पन्नवणा, जम्बूदीप पन्नत्ति। चन्दपन्नत्ति, सूरपन्नत्ति, निरयावलि, कप्पिया, कप्पवडंसिया, पुप्फिया, पुप्फ-चूलिया, वह्निदसा, ४ मूल तथा ४ छेद के जानकार) करण सत्तरि चरण सत्तरि के धारणहार समकित रूप प्रकाश के करणहार, मिथ्यात्वरूप अंधकार के मेटनहार, धर्म को दिपाने वाले, डिगते प्राणी को धर्म में स्थिर करने वाले, इत्यादि अनेक गुणों से सहित ऐसे श्री उपाध्यायजी महाराज को मेरी भाव वन्दना नमस्कार हो।

हे उपाध्यायजी म० आपकी दिवस सम्बन्धी अविनय आशातना हुई हो तो बारम्बार १००८ बार तिक्खुत्ते के पाठ से वन्दना करता हूँ। हे उपाध्यायजी महाराज आपका इस भव में पर भव में शरणा हो जो ॥ ४ ॥

साधु—वन्दना

आदरी संयमभार करणि करे अपार,
　　समिति गुपतिधार विकथा निवारी है।
जयणा करे छ काय, सावज्ज न बोले वाय,
　　बुझाई कषायलाय किरिया भण्डारी है।
ज्ञान भणे आठों याम, लेवे भगवन्त नाम,
　　धरम को करे काम ममता कूं मारी है।
कहत है तिलोकरिख, कर्मों का टाले विख,
　　ऐसे मुनिराज ताको वन्दना हमारी है ॥५॥

नमो लोए सव्व साहूणं—पांचवे पद, अढ़ाई द्वीप[1] पन्द्रह क्षेत्र रूप लोक के विषय साधुजी महाराज जघन्य दो हजार करोड़ उत्कृष्टा नव हजार क्रोड़ जयवंता विचरे, पांच महाव्रत पाले, पांच इन्द्रिय जीते, चार कषाय टाले, भाव सच्चे, करण सच्चे, जोग सच्चे, क्षमावन्त, वैराग्यवन्त, मनसमाधारणया, वयसमाधारणया, कायसमाधार-

१ यहां अपने २ गुरुजी महाराज का नाम बोलना चाहिए।

णया, नाण सम्पन्ना, दंसण सम्पन्ना, चरित्त सम्पन्ना, वेदनीय समाअहियासणाया मरणान्तिक कष्ट सहें, ऐसे सत्तावीस गुण करके सहित, ५२ अनाचार टालें, ४२ दोष टाल के अहार लेवें, ५ मांडलिक दोष टाल के भोगें २२ परिसह जीतें, १७ प्रकार संजम पालें, १२ भेद तप के करणहार, ६ काया के पीहर, ६ काया के ग्वाल ६ काया के प्रतिपाल, बुलाये आवे नहीं, नेतिये जीमे नहीं भमर भिक्षा के लेनहार. वस्त्र, पात्र, आहार, स्थानक निर्दोष भोगवें, भगवान् की आज्ञा में विचरें, इत्यादि अनेक गुणों से विराजमान जिन महापुरुषों को मेरी भाव वन्दना नमस्कार हो जो ॥

ऐसे गुरु महाराज आपकी दिवस सम्बन्धी अविनय आशातना की हो तो बारम्बार १००८ वार तिक्खुत्ते के पाठ से वन्दना करता हूँ हे स्वामी नाथ ! आपका इस भव पर भव में सदाकाल शरणा हो जो,

दोहा

अनन्त चौवीशी जिन नमूं सिद्ध अनन्ता क्रोड़ ।
केवल ज्ञानी गणधरां, वन्दू बेकर जोड़ ॥ १ ॥
दोय क्रोड़ केवल नमूं, विहरमान जिन वीस ।
सहस्र युगल कोड़ी नमूं, साधु वन्दू निश दीश ॥२॥

धन साधु धन साध्वी, धन धन है जिन धर्म ।
ये समर्यां पातक टले, टूटे आठों कर्म ॥ ३ ॥
अरिहंत सिद्ध समरु सदा, आचारज उपाध्याय ।
साधु सकल के चरण को, वन्दूं सीस नमाय ॥ ४ ॥

अढ़ाई द्वीप पन्द्रह क्षेत्र में श्रावक श्राविका दान देवे, शील पाले, तपस्या करे, भावना भावे, संवर करे सामायिक करे, पौषध करे, प्रति क्रमण करे, तीन मनोरथ चिंतवे, चौदह नियम चितारे, जीवादिक नौ पदार्थ जाने, श्रावक के २१ गुणांकर सहित, एक व्रत धारी जाव बारह व्रतधारी, भगवन्त की आज्ञा में विचरे, ऐसे बड़ों को हाथ जोड़ पैर पड़ के क्षमा मांगता हूँ आप क्षमा करें, क्षमा करने योग्य हैं और छोटों से समुच्चय क्षमाता हूँ ।

सात लाख पृथ्वीकाय, सात लाख अपकाय, सात लाख तेऊ काय, सातलाख वायु काय, दस लाख प्रत्येक बनस्पति काय, १४ लाख साधारण वनस्पति काय, दो लाख बेइन्द्रिय, दो लाख ते इंद्रिय, दो लाख चौरिन्द्रिय, चार लाख देवता, चार लाख नारकी, चार लाख तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय और चौदह लाख मनुष्य ऐसे चार गति में चौरासी लाख जीव योनि के किसी भी जीव को हणा[1] हो हणाया हो हणते

नोट—१ यह पाठ पूर्ण हिंसा त्याग रूप व्रत वाले पढ़ें, दूसरे साधारण अन्त के पाठ को ऐसा पढ़ें—हनूं नहीं, हणाऊं नहीं

को भला जाणा हो तो १८२४१२० वार तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

क्षमा याचना विधि

खामेमि सव्वे जीवे, सव्वे जीवा खमंतु मे ।
मित्ती मे सव्व भूएसु, वेरं मज्झं न केणइ ॥
एवमहं आलोइय निंदिय, गरिहिय, दुगंछियं सम्मं
तिविहेण पडिक्कन्तो वंदामि जिणे चउवीसं ॥

शब्दार्थ

सव्वे—सब — जीवे—जीवों को
खामेमि—खमाता हूँ — सव्वे—सब
जीवा—जीव — मे—मुझको
खमंतु—क्षमा करें — मे—मेरी
सव्वभूएसू—संपूर्ण प्राणियों में — मित्ती—मित्रता है
मज्झ—मेरी — केणइ—किसी के साथ
वेरं—शत्रुता — न—नहीं है
एवं—इस प्रकार — अहं—मैं
सम्मं—सम्यक् प्रकार — आलोइय—आलोचना करके

हनते को भला जानू नहीं ऐसी मेरी श्रद्धा प्ररूपणा है समय पर पूर्ण अहिंसा की आराधना से शुद्ध होऊं ।

निंदिय—निन्दा करके गरिहिय–गर्हा (विशेष निंदा) करके
दुगंछिऊ–जुगुप्सा (ग्लानि) करके तिविहेणं–मन वचन काया द्वारा
पडिक्कन्तो–निवृत्त होता हुआ चउव्वीसं—चोवीस
जिणे—अरिहंत भगवान् को वंदामि—वन्दना करता हूँ

काउस्सग्ग पडिन्ना--(कायोत्सर्ग की प्रतिज्ञा) का पाठ

देवसिअ पायच्छित्त विसोहणत्थं करेमि काउस्सग्गं

शब्दार्थ—

देवसिअ—दिन सम्बन्धी, पायच्छित्तविसोहणत्थं—व्रतों में लगे दोषों की विशुद्धि के लिये,
काउस्सग्गं—कायोत्सर्ग को करेमि—करता हूँ,

पच्चक्खाण विहि—(प्रत्याख्यान विधि) का पाठ

गंठिसहियं, मुट्ठिसहियं, नमुक्कार सहियं, पोरिसियं, साड्ढपोरिसियं, (अपनी अपनी इच्छानुसार) तिविहं चउविहंपि, आहारं, असणं, पाणं-खाइमं, साइमं, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तिआगारेणं वोसिरामि[1]

---

१ नोट—खुद त्याग करने के समय 'वोसिरामि' ऐसा ३ वार वोलें, अगर दूसरो को त्याग कराना हो तो 'वो सिरे' ऐसा ३ वार वोलकर करावें ।

श्रमण सूत्र

(अठारह पापस्थानक के आगे कोई-कोई यह भी पाठ बोलते हैं)

पच्चीस मिथ्यात्व का पाठ

जीवे-अजीव सन्ना, अजीवे जीव-सन्ना, धम्मे अधम्म-सन्ना, अधम्मे धम्म-सन्ना, साहुसु असाहु-सन्ना, असाहुसु साहु-सन्ना, मग्गे अमग्ग-सन्ना, अमग्गे मग्ग-सन्ना, मुत्ते अमुत्त-सन्ना, अमुत्ते-मुत्त-सन्ना, आभिग्रहिक मिथात्व, अणाऽभिग्रहिक मिथ्यात्व, आभिनिवेशिक मिथ्यात्व, सांशयिक-मिथ्यात्व, अणाभोग-मिथ्यात्व, लौकिक-मिथ्यात्व, लोकोत्तर-मिथ्यात्व, कुप्रावचन-मिथ्यात्व, ऊणा-इरित्त मिथ्यात्व, अधिकीरीत मिथ्यात्व, विपरीत मिथ्यात्व, अक्रिया मिथ्यात्व, अज्ञान मिथ्यात्व, अविनय-मिथ्यात्व, आसातना मिथ्यात्व, यों पच्चीस प्रकार का मिथ्यात्व सेविया होय सेवाया हो, सेवता प्रत्ये अनुमोदन किया होय, तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

॥ १४ स्थान में पैदा होनेवाले समुच्छिम का पाठ ॥

उच्चारेसु वा, पासवणेसु वा, खेलेसु वा, संघा-णेसु वा, वंतेसु वा, पित्तेसु वा, सोणीएसु वा, पूएसु वा, सुक्केसु वा, सुक्क-पोग्गल-परिसाडीएसु

वा, इत्थीपुरुस संजोगेसु वा, विगय जीव कलेवरेसु वा, नगर-निधमणेसु वा, सव्व-असुईठाणेसु वा ॥ यों चवदह प्रकार के स्थानों में पैदा होनेवाले समुच्छिम जीवों की विराधना करी होय, तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

पढमं समणसुत्तं

इच्छामि पडिक्कमिउं पगामसिज्झाए, निगाम सिज्झाए, संथाराउवट्टणाए, परियट्टणाए, आउट्टणपसारणाए, छप्पइसंघट्टणाए, कूइए, कक्करा इए, छिइए, जंभाइए, आमोसे, ससरक्खामोसे, आउलमाउलाए, सोअणवत्तिआए, इत्थीविप्परिआसिआए, दिट्ठीविप्परिआसिआए, मणविप्परिआसिआए, पाणभोअण-विप्परिआसिआए, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

बीअं समणसुत्तं

पडिक्कमामि गोयरचरियाए, भिक्खायरियाए, उग्घाडकवाडउग्घाडणाए, साणावच्छादारासंघट्टणाए, मंडिपाहुडिआए, बलिपाहुडिआए, ठवणापाहुडिआए, संकिए, सहसागारिए, अणेसणाए, पाणभोयणाए, बीयभोयणाए, हरियभोयणाए, पच्छाकम्मिआए, पुरेकम्मियाए, अदिट्ठहडाए, दगसंसट्ठ-

हडाए, रयसंसट्ठहडाए, पारिसाडणियाए, पारि-ट्ठावणियाए, ओहासणभिक्खाए, जं उग्गमेणं उप्पायणेसणाए, अपरिसुद्धं परिग्गहियं, परिभुत्तं वा, जं न परिट्ठविअं तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

तइयं समणसुत्तं

पडिक्कमामि चाउक्कालं, सज्झायस्स अकरण-याए, उभओकालं भंडोवगरणस्स अप्पडिलेहणाए, दुप्पडिलेहणाए, अप्पमज्जणाए, दुप्पमज्जणाए, अइ-क्कमे, वइक्कमे, अइयारे अणायारे जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

चउत्थं समणसुत्तं

पडिक्कमामि एगविहे असंजमे पडिक्कमामि दोहिं बंधणेहिं रागबंधणेणं,दोसबंधणेणं, पडिक्कमामि तिहिं दंडेहिं, मणदंडेणं, वयदंडेणं, कायदंडेणं, पडिक्कमामि तिहिं गुत्तीहिं, मणगुत्तीए, वयगुत्तीए, कायगुत्तीए, पडिक्कमामि तिहिं सल्लेहिं, माया-सल्लेणं, नियाणसल्लेणं, मिच्छादंसणसल्लेणं, पडिक्क-मामि तिहिं गारवेहिं इड्ढीगारवेणं, रसगारवेणं, सायागारवेणं, पडिक्कमामि तिहिं विराहणाहिं, नाण-विराहणाए, दंसणविराहणाए, चरित्तविराह-

णाए, पडिक्कमामि चउहिं कसाएहिं, कोह कसाएणं, माणकसाएणं मायाकसाएणं, लोहकसाएणं, पडिक्कमामि चउहिं सण्णाहिं, आहार सण्णाए, भय-सण्णाए, मेहुणसण्णाए, परिग्गहसण्णाए, पडिक्कमामि, चउहिं विकहाहिं इत्थीकहाए, भत्तकहाए, देसकहाए, रायकहाए, पडिक्कमामि चउहिं झाणेहिं अट्टेणं झाणेणं, रुद्देणं झाणेणं, धम्मेणं झाणेणं, सुक्केणं झाणेणं, पडिक्कमामि पंचहिं किरियाहिं, काइयाए, अहिगरणियाए, पाउसियाए, पारिता-वणियाए, पाणाइवायकिरियाए, पडिक्कमामि, पंचहिं कामगुणेहिं, सद्देणं, रूवेणं, गंधेणं रसेणं, फासेणं, पडिक्कमामि, पंचहिं महव्वएहिं, सव्वाओ पाणाइ-वायाओ वेरमणं, सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं, सव्वाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं, सव्वाओ मेहुणाओ वेरमणं, सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमणं, पडिक्कमामि पंचहिं समिईहिं, इरियासमिईए, भासा-समिईए, एसणासमिईए, आयाणभंडमत्त निक्खे-वणासमिईए, उच्चारपासवणखेलजल्लसिंघाण पारि-ठावणियासमिईए, पडिक्कमामि छहिं जीवनिकाएहिं पुढवीकाएणं, आउकाएणं, तेउकाएणं, वाउकाएणं, वणस्सइकाएणं, तसकाएणं, पडिक्कमामि छहिं

लेसाहिं, किण्हलेसाए, नीललेसाए, काउलेसाए, तेउलेसाए, पम्हलेसाए, सुक्कलेसाए, पडिक्कमामि सत्तहिं भयट्ठाणेहिं, अट्ठहिं मयट्ठाणेहिं, नवहिं बंभचेरगुत्तीहिं, दसविहे समणधम्मे, एक्कारसहिं उवासगपडिमाहिं, बारसहिं भिक्खुपडिमाहिं, तेरसहिं किरियाठाणेहिं, चउदसहिं भूयगामेहिं, पन्नरसहिं परमाहम्मिएहिं, सोलसहिं गाहासोलस-एहिं, सत्तरसविहे असंजमे, अट्ठारसविहे अबंभे, एगूणवीसाए णायज्झयणेहिं, वीसाए, असमाहिठा-णेहिं, इक्कबीसाए, सबलेहिं, बावीसाए, परीसहेहिं, तेवीसाए सूयगडज्झयणेहिं चउवीसाए देवेहिं, पणवीसाए, भावणाहिं, छव्वीसाए दसाकप्पवव-हाराणं उद्देसणकालेहिं, सत्तावीसाए अणगारगुणेहिं अट्ठावीसाए आयारप्पकप्पेहिं, एगूणतीसाए पाव-सुयप्पसंगेहिं, तीसाए महामोहणियट्ठाणेहिं, एक-तीसाए सिद्धाइगुणेहिं, बत्तीसाए जोग संगहेहिं, तेत्तीसाए आसायणाहिं।

अरिहंताणं आसायणाए, सिद्धाणं आसा-यणाए, आयरियाणं आसायणाए, उवज्झायाणं आसायणाए, साहूणं आसायणाए, साहुणीणं आसायणाए, सावयाणं आसाणाए, सावियाणं

आसायणाए, देवाणं आसायणाए, देवीणं आसायणाए, इहलोगस्स आसायणाए, परलोगस्स आसायणाए, केवलिपन्नत्तस्स धम्मस्स आसायणाए, सदेवमणुयासुरस्स लोगस्स आसायणाए, सव्वपाणभूयजीवसत्ताणं आसायणाए, कालस्स आसायणाए, सुयस्स आसायणाए, सुयदेवयाए आसयणाए, वायणायरियस्स आसायणाए, जं वाइद्धं, वच्चामेलिअं, हीणक्खरं, अच्चक्खरं, पयहीणं, विणयहीणं, जोग हीणं, घोसहीणं, सुट्ठुदिन्नं, दुट्ठुपडिच्छिअं, अकाले कओ सज्झाओ, काले न कओ सज्झाओ, असज्झाए सज्झायं, सज्झाये न सज्झायं तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

पंचमं समणसुत्तं

णमो चउवीसाए तित्थयराणं उसभाइ महावीर पज्जवसाणाणं,

इणमेव निग्गंथं पावयणं सच्चं, अणुत्तरं, केवलियं, पडिपुन्नं, नेआउयं, संसुद्धं, सल्लगत्तणं, सिद्धिमग्गं, मुत्तिमग्गं, निज्जाणमग्गं, निव्वाणमग्गं, अवितहमविसंधिं, सव्वदुक्खपहीणमग्गं ।

इत्थं ठीया जीवा सिज्झंति, वुज्झंति, मुचन्ति,

परिनिव्वायंति, सव्वदुक्खाणमंतं करंति।

तं धम्मं सद्दहामि, पत्तियामि, रोएमि, फासेमि, पालेमि, अणुपालेमि, तं धम्मं सद्दहंतो, पत्तिअंतो, रोयंतो, फासंतो, पालंतो, अणुपालंतो तस्स धम्मस्स केवलिपन्नत्तस्स अब्भुट्ठिओमि आराहणाए, विरओमि विराहणाए, असंजमं परियाणामि, संजमं उवसंपज्जामि, अबंभं, परियाणामि, बंभं उवसंपज्जामि अकप्पं परिआणामि, कप्पं उवसंपज्जामि, अन्नाणं परियाणामि, नाणं उवसंपज्जामि, अकिरियं परियाणामि, किरिअं उवसंपज्जामि, मिच्छत्त परियाणामि, सम्मत्तं उवसंपज्जामि, अबोहिं परियाणामि, बोहिं उवसंपज्जामि, जं संभरामि, जं च न संभरामि, जं पडिक्कमामि, जं च न पडिक्कमामि, तस्स सव्वस्स देवसिअस्स अइयारस्स पडिक्कमामि।

समणोऽहं संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मो अनियाणो, दिट्ठिसंपण्णो, मायामोस-विवज्जिओ अड्ढाइज्जेसु दीवसमुद्देसु पन्नरस कम्म-भूमीसु जावंति केइ साहू रयहरणगुच्छ पडिग्गह-धारा, पंचमहव्वयधारा, अट्ठारस सहस्ससीलंग-धारा, अक्खयायार-चरित्ता ते सव्वे सिरसा, मणसा, मत्थएण वन्दामि।

॥ प्रतिक्रमण करने की विधि ॥

निरवद्य स्थान में शुद्धता पूर्वक एक आसन पर बैठ कर तीनवार तिक्खुत्ता के पाठ से श्री शासनपति को या वर्तमान में अपने गुरु महाराज को खड़े हो वंदन करके चउवीसंथव की आज्ञा लेकर चउवीसंथव करें । चउ-वीसंथव में इरियावहियाए का पाठ १, तस्स उत्तरी का पाठ १, कह के काउसग्ग करें, काउसग्ग में दो लोगस्स का ध्यान करें, मन में १ नवकार मंत्र बोल के काउसग्ग पारें, फिर प्रगट चार ध्यान का पाठ,—ध्यान में मन वचन काया चलित हुए हों, आर्तध्यान रौद्रध्यान ध्याया हो, धर्म ध्यान शुक्ल ध्यान न ध्याया हो, तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं, ऐसा बोल कर १ लोगस्स का पाठ बोल के दो वार नमोत्थुणं का पाठ डाबा गोडा ऊंचा रख के बोलें, पीछे महावीर स्वामी की तथा गुरु की देवसिय प्रतिक्रमण करने की आज्ञा लेवें, बाद इच्छामिणं भंते का पाठ बोलें, पीछे नवकार मंत्र का उच्चारण करें, फिर तिक्खुत्ता का पाठ कह कर प्रथम आवश्यक की आज्ञा मांगें । प्रथम आवश्यक में करेमि भंते का पाठ बोल कर पीछे "च्छामि ठाइउं का पाठ कहें, पीछे तस्स उत्तरी का पाठ उच्चारण कर काउस्सग्ग करें । काउसग्ग में

१४ ज्ञान के अतिचार का, ५ सम्यक्त्व का ६० बारह ब्रतों का, १५ कर्मादान का, ५ संलेखना का, एवं ६६ अतिचार का, अठारह पाप स्थानक का, इच्छामि ठामि का और नवकार मंत्र का पाठ चिंतवन करके काउसग्ग पालें, काउसग्ग में प्रत्येक पाठ की समाप्ति में मिच्छामि दुक्कडं के बदले 'आलोउं' ऐसा चिंतवें। काउसग्ग पालते समय 'नमो अरिहंताणं' यह शब्द प्रकट कह कर आर्तध्यान रौद्रध्यान आदि बोल कर पहला आवश्यक समाप्त करें। बाद तिक्खुत्ता के पाठ से दूसरेआवश्यक की आज्ञा मांगे।

दूसरे आवश्यक में एक लोगस्स का पाठ कह कर सामायिक चउवीसंथव ये दो आवश्यक पूरे हुए। बाद तिक्खुत्ता के पाठ से तीसरे आवश्यक की आज्ञा मांगे, तीसरे आवश्यक में इच्छामि खमासमणो का पाठ दो वक्त बोलें।

॥ खमासमणा की विधि ॥

प्रथम जहां निसीहियाए शब्द आवे तब दोनों गोडे खड़े करके दोनों हाथ जोड़ कर बैठें, तथा ६ आवर्तन करें सो इस प्रकार—'प्रथम 'अहो' 'कायं' 'काय' यह शब्द उच्चारते ३ आवर्तन होते हैं सो कहते हैं—दोनों हाथ लम्बे कर

हाथ की दस अंगुलियां भूमि पर लगा कर तथा श्री गुरु-चरण स्पर्श करके मुंह से 'अ' अक्षर नीचे स्वर से कहे, फिर ऐसे ही दस अंगुलियां अपने मस्तक पर लगा कर 'हो' अक्षर ऊंचे स्वर से कहें, ये दोनों अक्षर कहने से पहिला आवर्तन होता है और इस प्रकार 'का' और 'य' ये दोनों अक्षर उच्चारते दूसरा आवर्तन हुआ, इस तरह 'का' और 'य' ये दो अक्षर कहने से तीसरा आवर्तन हुआ। फिर "जत्ता भे जवणिज्जं च भे" शब्द उच्चारते ३ आवर्तन होते हैं, वे इस तरह प्रथम 'ज' अक्षर मंद स्वर से 'त्ता' अक्षर मध्यम स्वर से और 'भे' अक्षर उच्च स्वर से, इस तरह से ऊपर मुजब बोलें, ये तीन अक्षर बोलने से प्रथम आवर्तन हुआ। और इसी प्रकार ज, व, णि, ये तीन अक्षर त्रिविध स्वर से ऊपर मुजब कहने से दूसरा आवर्तन हुआ। तथा इसी प्रकार 'ज्जंच भे' ये तीन अक्षर त्रिविध स्वर से पूर्ववत् बोलने से तीसरा आवर्तन हुआ, एवं ३-३-६ आवर्तन १ पाठ में बोलें और जहां 'तित्तीसन्नयराए' शब्द आवे तब खड़ा होकर पाठ समाप्त करें, इसी मुताबिक खमासमणो का दूसरा पाठ बोलें, उसमें भी ६ आवर्तन पूर्ववत् कहें। दूसरे खमासमणा में "आवसियाए पडिक्कमामि" ये १० अक्षर न कहें इस प्रकार दो खमासमणा देकर सामायिक एक चउवी-

संथव दो, वन्दना तीन, ये तीन आवश्यक पूरे हुए और चौथा आवश्यक की तिक्खुत्तोके पाठसे आज्ञा लें।

पीछे खड़े होकर ६६ अतिचारों का पाठ जो काउसग्ग में चिंतन किया था वह सब यहां प्रगट कहें, फरक इतना ही है कि काउसग्ग में प्रत्येक पाठ की समाप्ति में "मिच्छामि दुक्कडं" की जगह "आलोउं" कहा था सो आलोउं के बदले प्रगट "मिच्छामि दुक्कडं" कहें, बाद श्रावक सूत्र पढ़ने की आज्ञा मांगें। पीछे "तस्स सव्वस्स" पाठ का उच्चारण करें, फिर नीचे बैठ कर दाहिना (जीवणा) गोडा ऊंचा रख कर दोनों हाथ की दशों ही अंगुलियां मिलाकर गोड़े ऊपर रक्खें। पीछे नवकार मंत्र कह कर "करेमि भंते" का पाठ कह कर "चत्तारिमंगलं"का पाठ बोलें, बाद "इच्छामि ठाइऊं"का पाठ तथा "इरियावहियाए" का पाठ पढ़ कर दंसण-सम्यक्त्व तथा बारह अणुव्रत स्थूल सहित कहें। फिर ऐसे स्यक्त्व के पूर्व बारहव्रत संलेखणा सहित, इनके विषय जो कोई अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार, जानते, अजानते मन, बचन, व काया से सेवन किया हो, सेवन करते हुए को अणुमोदन किया हो तो अनन्त सिद्ध केवली भगवान् की साख से "मिच्छामिदुक्कड़ं" कहके अठारह पाप स्थानक और "इच्छामि ठाइऊं" का पाठ बोलें फिर

खड़े होकर हाथ जोड़के "तस्सधम्मस्स" का पाठ उच्चारण करें बाद दो खमासणा पूर्ववत् विधि सहित देकरके भाव वन्दना करने को आज्ञा लें, फिर दोनों हाथ जोड़कर मस्तक को नीचे नमाय कर एक नवकार मंत्र कहके पांच पदों की वन्दना करें। फिर सीधे बैठ के अनन्त चौबीसी कह के अढ़ाई द्वीप का पाठ बोलकर चौरासी लाख जीव योनि का पाठ व "खामेमि सव्वे जीवा" का पाठ बोल कर अठारह पाप स्थान कहें, फिर सामायिक एक, चौवीसंथव दो, वन्दना तीन, प्रतिक्रमण चार ये चार आवश्यक पूरे हुए, बाद खड़े होके पांचवां आवश्यक की तिक्खुत्ता के पाठ से आज्ञा लेकर "देवसिय णाण-दंसण-चरित्ता चरित्त तव अइयार पायच्छित्त विसोहणत्थं करेमि काउस्सगं" बोल कर बाद नवकार मंत्र, करेमिभंते का पाठ, इच्छामि ठाइऊ का पाठ, और तस्स उत्तरी का पाठ कहके काउस्सग्ग में देवसिय तथा राइसिय प्रतिक्रमण में ४ लोगस्स, पाक्षिक प्रतिक्रमण में ८ लोगस्स, चौमासी प्रतिक्रमण में १२ लोगस्स, संवत्सरी प्रतिक्रमण में २० लोगस्स का काउस्सग्ग करें। फिर काउस्सग्ग पालें, आर्तध्यान, रौद्रध्यान आदि चार ध्यान का पाठ प्रकट बोल के एक लोगस्स कहें, बाद दो खमासमण विधि सहित देवें, सामायिक एक, चौवीसंथव दो, वंदना तीन,

प्रतिक्रमण, चार, काउस्सग्ग पाँच, ये पाँच आवश्यक पूरे हुए। बाद छट्ठे आवश्यक की आज्ञा मांगे व धन्य श्री महावीर अंतरयामी ऐसे कहें, छट्टे आवश्यक में खड़ा हो साधुजी महाराज हों तो उनसे अपनी शक्ति अनुसार पच्चक्खाण करें, वे न हों तो बड़े श्रावक से पच्चक्खाण मांगे और बड़े श्रावक न हों तो स्वयमेव सम्मुच्चय पच्चक्खाण के पाठ से पच्चक्खाण करें। फिर सामायिक एक, चौवीसंथव दो, वंदना तीन, प्रतिक्रमण चार, कायोत्सर्ग पाँच, पच्चक्खाण छः, ये छहों आवश्यक समाप्त हुए।

ऐसे कहकर इन छः आवश्यक में जानते अजानते जो कोई अतिचार दोष लगा हो तथा पाठ उच्चारते काना, मात्रा, अनुस्वार, पद, अक्षर अधिक न्यून आगे पीछे कहा हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

१ मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण, २ अव्रत का प्रतिक्रमण, ३ कषाय का प्रतिक्रमण, ४ प्रमाद का प्रतिक्रमण, ५ अशुभ योग का प्रतिक्रमण, ये पाँच प्रतिक्रमण माहिला कोई भी प्रतिक्रमण, नहीं किया हो हालते चालते, उठते बैठते पढ़ते गुणते, मन वचन, काया करके ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप सम्बन्धी जानते, अजानते, द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव, आश्रयी कोई भी प्रकार से पाप दोष लगा हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं। गये काल का प्रतिक्रमण, वर्त-

मान काल की सामायिक, आवता काल का पच्चक्खाण, उनमें जो कोई दोष लगा हो तो तस्समिच्छामि दुक्कडं।

फिर नीचे बैठकर डावां गोडा ऊंचा रखके दोनों हाथ मस्तक पर रखकर दो वक्त नमोत्थुणं पूर्वोक्त विधि से बोल के जो साधु मुनिराज विराजते हों उनको तिक्खुत्ता के पाठ से तीन वक्त विधि सहित वन्दना नमस्कार करके तथा कोई साधु मुनिराज नहीं विराजते हों तो पूर्व तथा उत्तर दिशि की तरफ मुंह करके श्री महावीर स्वामी को तथा धर्माचार्य (धर्मगुरु) को वन्दना नमस्कार करके सर्व स्वधर्मी भाइयों के साथ खमत खामणा अन्तःकरण से करें, बाद चौवीसो स्तवन उच्चारण करें। प्रतिक्रमण में जहाँ देवसिय शब्द आवे, वहाँ देवसिय प्रतिक्रमण में तो देवसिय संबंधी, राइय प्रतिक्रमण में राइय सम्बन्धी, पक्खी प्रतिक्रमण में पक्खी सम्बन्धी, चौमासी प्रतिक्रमण में चौमासी संबन्धी और संवत्सरी प्रतिक्रमण में सम्वत्सरी संबंधी कहें।

इति श्री प्रतिक्रमण सूत्र समाप्त।

(सविधि, सार्थ, मूल, एवं भाषा सहित)

"पाक्षिक चौवीसी"

पाक्षिक सम्बन्धी सुश्रावक, करो क्षमापना रे ॥ टेर ॥

ऋषभ, अजित, सम्भव सुखदाई, अभिनन्दन प्रभु त्रिभुवन त्राई ।
सुमति पद्म प्रभ हरें, दुःख त्रय तापना रे ॥ पाक्षि० ॥ १ ॥

श्री सुपार्श्व चन्द प्रभु ध्यावो, सुविधि शीतल श्रेयांस मनावो ।
वास पूज्य चरणन में, चित्त स्थापना रे ॥ पाक्षि० ॥ २ ॥

विमल अनन्त धर्म पद पूजो, शान्तिनाथ सो देव न दूजो ।
कुंथु और अरह जाप, करे क्षय पापनारे ॥ पाक्षि० ॥ ३ ॥

मल्लिनाथ, मुनि सुव्रतस्वामी, श्रीनमि नेमि पार्श्व शिवगामी ।
है अगणित फल महावीर,—जिन जापनारे ॥ पाक्षि० ॥ ४ ॥

विहर मान प्रभु बीश जिनेशा, पुण्डरीक सो आदि गणेशा ।
सब मुनिराज महोदय, दिव शिव आपनारे ॥ पाक्षि० ॥ ५ ॥

प्रेमयुक्त सब खमो खमावो, पारस्परिक विरोध मिटावो ।
मैत्रीभाव बढ़ाय, कर्म वन कापनारे ॥ पाक्षि० ॥ ६ ॥

माधव मुनि मन मोद बढ़ाके, उत्तम क्षमा भाव मन लाके ।
भव्य भक्ति से हिलमिल, छन्द अलापनारे ॥ पाक्षि० ॥ ७ ॥

तीन मनोरथ (ठाणाङ्ग ३ रा ठाणा का) ४थं उद्दे०

तिहिं ठाणेहिं समणोवासए महानिज्जरे महापज्जवसाणे भवइ-कयाणं अहं अप्पंवा बहुंवा परिग्गहंपरिच्चइस्सामि १ कयाणं अहं मुंडे भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वइस्सामि २ कयाणं अहं अपच्छिममारणंतिय संलेहणाझूसणा झूसिए भत्त-पाण पडि आइक्खिए पाओवगए कालं अणव कंखमाणे विहरि

रसामि । एवं समणासा सवयसा सकायसा पागडमाणे समणो वासए महानिज्जरे········३ ॥

अर्थ—विशेषता के साथ—पहला मनोरथ—"श्रमणोहासक श्रावक ऐसा चिन्तन करे कि कब मैं चौदह प्रकार का बाह्य और नो प्रकार के आभ्यन्तर परिग्रह से निवृत्त हूँगा, यह, परिग्रह, काम, क्रोध, मद, मोह-लोभ, विषय, कषाय को बढ़ाने वाला और दुर्गति का दाता, मोह, मत्सर, राग, द्वेष का मूल, धर्म-ज्ञान, क्रिया, क्षमा-दया, सत्य, सन्तोष, समकित, संयमतप, ब्रह्मचर्य, सुमति का नाश करने वाला, अठारह पाप का बढाने वाला अनन्त संसार में भ्रमाने वाला, अनित्य, अशाश्वतिक, असरण, अतरण, निग्रन्थों से निन्दित, परिग्रह का मैं जब त्याग करूंगा सो दिन मेरा परम कल्याणरूप होगा।

दूसरा मनोरथ—"श्रमणोपासक, श्रावकजी ऐसा चिन्तन न करें कि कब मैं द्रव्य भावे मुंड होकर दश यति धर्म नववाड विशुद्ध ब्रह्मचर्य पांच महाव्रत, पांच सुमिति, तीन गुप्ति, सत्तरह भेदे संयम, बारह प्रकार तप—छः काया का दलाल, अप्रितबंध विहार सर्वसंग रहित, वीतराग, की आज्ञा मुजब चलने वाला बनूं, जिस दिन निर्ग्रन्थ का मार्ग अंगीकार करूंगा वह दिन धन्य होगा।

तीसरा—मनोरथ—"श्रामणोपासक ऐसा चिन्तन करें कि किस वक्त मैं सर्व पाप स्थानक आलोचना कर, निन्दा कर निश्शल्य होकर सर्वजीवों से खमत खमावरण कर त्रिविध अठारह पाप का त्याग करूंगा, जिस शरीर को मैंने अति प्रेम से पाला है उस पर से ममता त्याग पण्डित मरण से मरूंगा वह दिन हमारा धन्य होगा।

from Berlin many hun-
will already have cele-
elatives in the capital
ld be requested in six-
est Berlin for the first
eriod over Christmas and
ing requests for Easter
d upon. Thus it is pro-
of the GDR and
id for one year.

joy to those who have no
figures may be mentioned
with which the Berliners
day of th
913,000